

1875

— साहित्यिक एवं
सांस्कृतिक जागरण
मलयज शीतलाम्
सस्य श्यामलां मातरम् ।
वन्दे मातरम् ॥

1905

— स्वदेशी चेतना और
स्वतंत्रता संग्राम

1915

— महात्मा गांधी और
राष्ट्रीय आंदोलन

1947

— स्वतंत्रता का प्रभात

1950

— संविधान और
गणराज्य का उदय

1960

— राष्ट्र-निर्माण और
औद्योगिक विकास

1967

— हरित क्रांति
और वैज्ञानिक प्रगति

1969

— अंतरिक्ष एवं तकनीकी
विकास की उड़ान

मीमांसा

हिंदी वार्षिक पत्रिका 2026

वन्दे मातरम्

2000

— आधुनिक भारत :
प्रगति और परिवर्तन

2025

— भविष्य की
ओर अग्रसर भारत

2026 — 'राष्ट्रचेतना की
शाश्वत स्वरधारा

राष्ट्रीय कोशिका विज्ञान केंद्र (रा. को. वि. के.) पुणे - 411007

मुखपृष्ठ प्रतिमा – वंदे मातरम रचना को 150 वर्ष पूर्ण हुए, और इसके उपलक्ष्य में 7 नवंबर 2025 से 7 नवंबर 2026 तक देश भर में एक वर्ष का राष्ट्रीय स्मरणोत्सव मनाया जा रहा है। इस महत्वपूर्ण पड़ाव को नमन करते हुए, मीमांसा के इस वर्ष के अंक का मुखपृष्ठ वंदे मातरम रचना को सादर समर्पित ।



बीआरआईसी
बायोटेक्नोलॉजी विभाग का संगठन
BRIC
a DBT Organization



एन सी सी एस
राष्ट्रीय कोशिका विज्ञान केंद्र
NCCS
NATIONAL CENTRE FOR CELL SCIENCE

‘मीमांसा’

हिन्दी पत्रिका- चौदहवां अंक

संरक्षक

प्रो. थोमस पुकाड्यिल

प्रमुख संपादिका

डॉ. शैलजा सिंह

मुखपृष्ठ सौजन्य

विधि कर्दम

डॉ. शैलजा सिंह

फोटोग्राफी सौजन्य

श्री. महावीर रांगोळे

अनुक्रमणिका

संदेश	1.
संपादकीय	2.
विज्ञानवाणी	6-24
कृत्रिम बुद्धिमत्ता : मशीनों का नहीं, मानव बुद्धिमत्ता का युग! -डॉ. अमित यादव	6-10
शोध प्रकाशन के मुख्य हाइलाइट्स- डॉ. गिरधारी लाल, डॉ. जोमन जोसेफ, डॉ. दीपा सुब्रमण्यम और डॉ. अमिताभ मजुमदार, डॉ. धिरज धोत्रे, डॉ. प्रसाद आबनावे	11-20
फेफड़ों के कैंसर से बचाव की वैज्ञानिक पहल- श्रीमती. प्रतिभा पाटील	21
अतीत की दृष्टि , आज का विज्ञान- श्री. तुषार शर्मा	22-24
साहित्य अमृत	25-54
विज्ञान (साइंस) के छात्र की चार अवस्थाएँ (रिसर्च, पहचान, जीने की कला और चिंतन)- डॉ. ए. एल्लकिया	25-28
मैं आखिर किसके लिए दौड़ रहा हूँ?- श्री सुनिल कचरे	29-31
युद्धों की बढ़ती आग और जलवायु परिवर्तन: एक अनदेखा संकट – श्री. तुषार शर्मा	31-33
दिल और दिमाग का संवाद- श्री. शुभम यादव	34
दुमदुमली पंढरी': आषाढ़ी वारी 2026: एक अविस्मरणीय आध्यात्मिक अनुभव- श्री. महावीर रांगोळे	35-38
'हिंदी पखवाड़े (2025) के पुरस्कृत निबंध	39-54

अनुक्रमणिका

काव्यामृत	55-61
• एक मच्छर की मोहब्बत - श्री. शिवा कुमार तोमर	55-56
• कविता रूपी कन्याएँ- सुश्री. वंदना मौर्य	57-58
• माधव, अब तो तुम अवतार लो- श्री. अनुराग कश्यप	59
• दर्पण- श्री. तुषार शर्मा	60
• एतवार की महिमा- सुश्री. ऋषिका बुखारिया	61
झलकियाँ	62-70

‘शुभसंदेश’



वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देने के साथ-साथ राजभाषा कार्यान्वयन की जिम्मेदारी निभाते हुए हमने शुरू किया हुआ ‘मीमांसा’ का सफर अविरत जारी रखते हुए इस पत्रिका का 14वां अंक प्रस्तुत है।

इस सफर में ‘मीमांसा’ संपादकीय टीम की लगन, मेहनत और अथक प्रयासों के साथ-साथ एनसीसीएस परिवार के अधिकतम सदस्यों का पत्रिका के लिए योगदान निश्चित ही प्रेरणादायी है।

मुझे आशा और विश्वास है कि राष्ट्रभाषा के माध्यम से स्पष्ट किए जा रहे वैज्ञानिक तथ्य एवं अन्य साहित्यिक कलाकृतियाँ पाठकों को पसंद आएँगे।

मीमांसा की यह यात्रा सफल रूप से जारी रखने के लिए लेखकों के साथ-साथ पाठकों का शतशः धन्यवाद। पत्रिका प्रकाशन कार्य से जुड़े सभी को बहुत-बहुत बधाई ।

मेरी वैयक्तिक शुभकामनाओं के साथ,

प्रो. थोमस जे. पुकाडियिल
निदेशक, ब्रिक-एनसीसीएस

‘संपादकीय’



प्रिय मित्रों और सहकर्मियों,

वंदे मातरम रचना को 150 वर्ष पूर्ण हुए, और देश भर में एक वर्ष का राष्ट्रीय स्मरणोत्सव मनाया जा रहा है। इस महत्वपूर्ण पड़ाव को नमन एवं वंदन करते हुए, मीमांसा के इस वर्ष के अंक का मुखपृष्ठ ‘वंदे मातरम’ रचना को सादर समर्पित कर रही हूँ।

प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष भी विज्ञान के विभिन्न विषयों से संबंधित लेखों का योगदान हमें प्राप्त हुआ है। साथ ही स्टाफ एवं छात्रों की साहित्यिक एवं काव्यप्रतिभा का दर्शन भी इसी अंक में पढ़ने को मिल रहा है। प्रस्तुत लेखों एवं कविताओं की सहज, सरल एवं सुगम्य भाषा इस अंक की विशेषता है। इस अंक के लिए योगदान दिए हुए सभी वैज्ञानिक, स्टाफ एवं शोधछात्रों के प्रति आभारी हूँ।

पत्रिका निर्माण में हमारी प्रेरणास्थान संस्था के निदेशक महोदय का हार्दिक धन्यवाद। पत्रिका के लिए सदैव सहयोग प्रदान करनेवाले मेरी संपादकीय टीम (श्रीमती. स्मिता खडकीकर एवं श्री. रामेश्वर नेमा जी), सर्जनात्मक सहयोग देनेवाले मेरे छात्र और अन्य तकनीकी टीम का बहुत बहुत आभार। मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत अंक आपको पसंद आएगा।

ब्रिक-एनसीसीएस टीम के सहयोग से प्रतिवर्ष हम नवीनतम विषयों को प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

मेरी वैयक्तिक शुभकामनाओं सहित

डॉ. शैलजा सिंह
मुख्य संपादिका

वंदे मातरम् : एक रचना विधि कर्दम एवं डॉ. शैलजा सिंह

प्रयोगशाला क्रमांक 9 (नवीन भवन)

कभी-कभी कोई रचना केवल शब्दों का समूह नहीं होती, बल्कि वह अपने समय की पूरी चेतना को अपने भीतर समेट लेती है। 'वंदे मातरम्' ऐसी ही एक रचना है। इसे पढ़ते या सुनते हुए केवल एक गीत का अनुभव नहीं होता, बल्कि उस भारत की कल्पना सामने आती है जो विदेशी शासन के अधीन था और जिसके भीतर धीरे-धीरे एक राष्ट्र के रूप में स्वयं को पहचानने की चेतना विकसित हो रही थी।¹ 'वंदे मातरम्' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह भारत को केवल एक भौगोलिक सीमा के रूप में नहीं देखता, बल्कि उसे मातृभूमि और माँ के रूप में अनुभव कराता है। इसी भाव ने इसे साहित्य की सीमाओं से निकालकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की आवाज बना दिया।

'वन्दे मातरम्' की रचना **बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय** ने की थी। इसका प्रकाशन 7 नवंबर 1875 को साहित्यिक पत्रिका 'बंगदर्शन' में हुआ और बाद में इसे उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'आनंदमठ' में शामिल किया गया, जो 1882 में प्रकाशित हुआ। 1896 में कोलकाता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'वन्दे मातरम्' का सार्वजनिक गायन किया। इसके बाद यह रचना राष्ट्रीय चेतना के व्यापक मंच पर और अधिक प्रभावशाली ढंग से सामने आई।

1905 का **बंग-भंग** आंदोलन भारतीय इतिहास में एक निर्णायक मोड़ लेकर आया। विदेशी शासन की विभाजनकारी नीतियों के विरोध में जब स्वदेशी आंदोलन ने जोर पकड़ा, तब 'वन्दे मातरम्' की गूँज जन-जन तक पहुँचने लगी। यह केवल एक गीत न रहकर विरोध, एकता, राष्ट्रप्रेम और स्वाभिमान की सशक्त अभिव्यक्ति बन गया। 7 अगस्त 1905 को भी 'वन्दे मातरम्' का उद्घोष राजनीतिक प्रतिरोध के स्वर के रूप में सुनाई दिया और देखते ही देखते यह राष्ट्रीय आंदोलन की पहचान बन गया।

किसी रचना की सार्थकता केवल उसके सृजन में नहीं, बल्कि इस बात में निहित होती है कि वह लोगों के हृदय और भावनाओं को किस हद तक स्पर्श करती है। 'वन्दे मातरम्' ने यही कर दिखाया—इसने शब्दों को जनभावना का स्वर बना दिया। उस दौर में भारत विदेशी शासन के अधीन था और भारतीय जनता स्वतंत्रता से वंचित जीवन जी रही थी। ऐसे समय में देशवासियों के भीतर जाग रही स्वतंत्रता

और स्वाभिमान की भावना को एक ऐसे स्वर की आवश्यकता थी, जो उन्हें अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम और समर्पण से जोड़ सके। 'वन्दे मातरम्' ने धीरे-धीरे इसी भावना को स्वर प्रदान किया और राष्ट्रीय चेतना का एक सशक्त प्रतीक बन गया।

‘वन्दे मातरम्’ का सरल अर्थ है—‘हे माँ, मैं तुम्हें नमन करता हूँ।’

लेकिन इस छोटे-से संबोधन में केवल प्रणाम का भाव नहीं, बल्कि श्रद्धा, सम्मान और समर्पण की गहरी अनुभूति भी समाई हुई है। ‘वन्दे’ में मातृभूमि के प्रति आदर और निष्ठा का भाव है, जबकि ‘मातरम्’ भारत को एक माँ के रूप में संबोधित करता है।

इस प्रकार ‘वन्दे मातरम्’ केवल देश को संबोधित करने वाला उद्घोष नहीं रह जाता, बल्कि व्यक्ति और मातृभूमि के बीच एक आत्मीय और भावनात्मक संबंध स्थापित करता है। देश तब केवल वह भूमि नहीं रहता जहाँ हम जन्म लेते और जीवन बिताते हैं; वह हमारी पहचान, हमारी स्मृतियों, हमारी संस्कृति और हमारे अस्तित्व का अभिन्न हिस्सा बन जाता है।

शायद यही ‘वन्दे मातरम्’ की सबसे गहरी भावनात्मक शक्ति है। बंकिमचंद्र ने मातृभूमि को ‘माँ’ के रूप में संबोधित कर देश के साथ हमारे संबंध को एक आत्मीय और जीवंत रूप प्रदान किया। उनके इस संबोधन ने भारत को केवल एक देश या विचार न रहने देकर माँ के स्नेह, सम्मान और अपनत्व से जुड़ी एक सजीव अनुभूति बना दिया। ‘मातरम्’ शब्द में समाया यही अपनापन ‘वन्दे मातरम्’ को एक साधारण देशभक्ति गीत से आगे ले जाकर गहरी राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति बना देता है।

यही इस रचना की सबसे बड़ी शक्ति थी कि वह साहित्य के पन्नों से निकलकर स्वतंत्रता आंदोलन की आवाज बन गई। शब्द भले ही कागज़ पर लिखे गए थे, लेकिन उनकी गूँज लोगों के हृदय तक पहुँची। ऐसे समय में, जब अपनी बात कहने के साधन सीमित थे, ‘वन्दे मातरम्’ ने असंख्य लोगों की भावनाओं को एक स्वर दिया और उन्हें एक साझा भावना से जोड़ दिया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी इसकी यात्रा समाप्त नहीं हुई। **24 जनवरी 1950** को संविधान सभा ने ‘वन्दे मातरम्’ को राष्ट्रीय गीत के रूप में स्वीकार किया।

आज जब हम ‘वन्दे मातरम्’ का उच्चारण करते हैं, तो इसे केवल इतिहास में दर्ज एक गीत के रूप में नहीं देखना चाहिए। इसके पीछे छिपी उस भावना को समझना आवश्यक है, जिसने इसे जन्म दिया था—मातृभूमि के प्रति गहरा प्रेम, स्वतंत्रता के

महत्व का बोध, राष्ट्रीय स्वाभिमान और अपने देश के प्रति कर्तव्य की भावना। 'वन्दे मातरम्' हमें केवल अपने अतीत की याद नहीं दिलाता, बल्कि वर्तमान में अपने दायित्वों को समझने की प्रेरणा भी देता है।

किसी रचना की वास्तविक सफलता शायद यही होती है कि वह अपने समय की सीमाओं को पार कर आने वाली पीढ़ियों से भी निरंतर संवाद करती रहे। 'वन्दे मातरम्' ऐसी ही कालजयी रचना है। जिस समय यह स्वतंत्रता और स्वाभिमान की आवाज बना था, आज उसी रचना का अर्थ हमारे लिए कुछ और व्यापक हो जाता है। यह हमें याद दिलाता है कि स्वतंत्रता केवल प्राप्त कर लेने का अधिकार नहीं, बल्कि उसके मूल्य को समझने, उसका सम्मान करने और उसे जिम्मेदारी के साथ आगे बढ़ाने का संकल्प भी है।

इसीलिए 'वन्दे मातरम्' केवल इतिहास के पन्नों में दर्ज एक गीत नहीं है। यह भारत की सामूहिक स्मृति, भावनाओं और राष्ट्रीय चेतना में रची-बसी एक अनुभूति है। माँ को नमन करना केवल शब्दों का उच्चारण नहीं, बल्कि उसके प्रति अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को पहचानना भी है। शायद 'वन्दे मातरम्' का सच्चा अर्थ यही है—मातृभूमि के चरणों में केवल शीश झुकाना नहीं, बल्कि उसके प्रति अपने हर कर्तव्य को श्रद्धा से निभाना; उसके अतीत को स्मरण करना, उसके वर्तमान को सँवारना और उसके भविष्य को बेहतर बनाने का संकल्प लेना।

'वन्दे मातरम्' ने धीरे-धीरे इसी भावना को स्वर प्रदान किया और यह संपूर्ण राष्ट्र की जागृति और एकजुटता का एक सशक्त माध्यम बन गया

कृत्रिम बुद्धिमत्ता : मशीनों का नहीं, मानव बुद्धिमत्ता का युग!

मानव इतिहास में कुछ तकनीकों ने हमारे काम करने का तरीका बदला, कुछ ने संवाद करने का और कुछ ने यात्रा करने का। पर पहली बार हमारे सामने ऐसी तकनीक है जो हमारे सोचने के तरीके को भी प्रभावित कर सकती है। उसका नाम है: कृत्रिम बुद्धिमत्ता।

आज हम कृत्रिम बुद्धिमत्ता को प्रशिक्षित कर रहे हैं। परंतु एक प्रश्न शायद उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है—क्या उसी प्रक्रिया में कृत्रिम बुद्धिमत्ता भी हमें प्रशिक्षित कर रही है? यदि हम प्रत्येक उत्तर बिना जाँच स्वीकार करने लगे, प्रत्येक निर्णय एल्गोरिद्म पर छोड़ दें और प्रत्येक सुविधा के बदले अपनी जिज्ञासा, तर्क तथा स्वतंत्र चिंतन का थोड़ा-थोड़ा त्याग करते जाएँ, तो परिवर्तन इतना धीमा होगा कि हमें उसका आभास भी नहीं होगा। भविष्य की सबसे बड़ी चुनौती यह नहीं होगी कि मशीनें मनुष्यों से अधिक बुद्धिमान बन जाएँ; बल्कि यह होगी कि कहीं मनुष्य प्रश्न पूछना ही न छोड़ दें। विज्ञान की शुरुआत उत्तरों से नहीं, बल्कि प्रश्नों से होती है। इसलिए AI के युग में सबसे बड़ी क्षमता कोई एल्गोरिद्म नहीं, बल्कि मानव मस्तिष्क की जिज्ञासा, विवेक और नैतिक साहस है।

जीवन के हर क्षेत्र में AI की बढ़ती भूमिका

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का सबसे बड़ा प्रभाव यह नहीं है कि उसने केवल कार्यों की गति बढ़ाई है, बल्कि यह है कि उसने निर्णय लेने की प्रक्रिया को अधिक तेज़, सटीक और डेटा-आधारित बना दिया है। आज जब बैंक संदिग्ध लेन-देन की चेतावनी देता है, मानचित्र सबसे उपयुक्त मार्ग सुझाता है, डिजिटल चैटबॉट त्वरित समाधान उपलब्ध कराते हैं या रेलवे और विमानन सेवाएँ संसाधनों का बेहतर प्रबंधन करती हैं, तब इनके पीछे कहीं न कहीं AI कार्य कर रहा होता है। इन परिस्थितियों में AI हमारे स्थान पर निर्णय नहीं लेता, बल्कि बेहतर निर्णय के लिए आवश्यक विश्लेषण और विकल्प उपलब्ध कराता है।

इसका प्रभाव स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि और वैज्ञानिक अनुसंधान तक समान रूप से दिखाई देता है। रोगों की प्रारंभिक पहचान, चिकित्सा चित्रों के विश्लेषण, दवा विकास, व्यक्तिगत शिक्षण, जीनोमिक अध्ययन, वैज्ञानिक साहित्य के विश्लेषण तथा मौसम और फसल संबंधी सलाह में AI एक प्रभावी विश्लेषणात्मक उपकरण बन चुका है। इससे विशेषज्ञों का समय नियमित कार्यों में कम और नए विचारों, प्रयोगों तथा समस्याओं के समाधान में अधिक लग सकता है। इन उदाहरणों से

स्पष्ट है कि AI केवल कार्यों का स्वचालन नहीं कर रहा, बल्कि निर्णयों की गुणवत्ता को बेहतर बनाने का प्रयास कर रहा है। फिर भी यह समझना आवश्यक है कि AI का उद्देश्य मानव बुद्धि का स्थान लेना नहीं, बल्कि उसे अधिक सक्षम बनाना है। जब तक अंतिम निर्णय विवेक, अनुभव और मानवीय उत्तरदायित्व के साथ लिया जाता रहेगा, तब तक AI वास्तव में मानव क्षमता का विस्तार करने वाली तकनीक सिद्ध होगी।

चुनौतियाँ केवल तकनीकी नहीं, सामाजिक और नैतिक भी

कृत्रिम बुद्धिमत्ता जितनी शक्तिशाली तकनीक है, उतनी ही बड़ी जिम्मेदारी भी अपने साथ लेकर आती है। AI उपलब्ध आँकड़ों से सीखता है; इसलिए यदि उसके प्रशिक्षण के लिए प्रयुक्त जानकारी अपूर्ण, पक्षपातपूर्ण या त्रुटिपूर्ण होगी, तो उसके निष्कर्ष भी उसी प्रकार प्रभावित होंगे। इस कारण चिकित्सा, न्याय, वित्त, राष्ट्रीय सुरक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान जैसे संवेदनशील क्षेत्रों में AI को निर्णयकर्ता नहीं, बल्कि निर्णय-सहायक के रूप में ही देखा जाना चाहिए। अंतिम उत्तरदायित्व सदैव मानव विशेषज्ञ का रहेगा।

AI की वास्तविक शक्ति उसके एल्गोरिद्म से अधिक उसके प्रशिक्षण के लिए उपलब्ध डेटा में निहित होती है। मोबाइल फोन, सामाजिक माध्यमों, डिजिटल भुगतान, स्वास्थ्य ऐप और अन्य ऑनलाइन सेवाओं के माध्यम से हम प्रतिदिन अपने बारे में विशाल मात्रा में जानकारी साझा करते हैं। यही डेटा AI को अधिक सक्षम बनाता है, पर यदि उसका संग्रह, संरक्षण और उपयोग उत्तरदायित्व के साथ न हो, तो वही व्यक्तिगत गोपनीयता, राष्ट्रीय सुरक्षा और बौद्धिक संपदा के लिए गंभीर चुनौती बन सकता है। किसी व्यक्ति के निजी अभिलेख हों या किसी वैज्ञानिक संस्थान का वर्षों का शोध डेटा—उनका अनधिकृत उपयोग केवल आर्थिक हानि नहीं, बल्कि ज्ञान, नवाचार और प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता की भी क्षति है। इसलिए डेटा सुरक्षा, कॉपीराइट, डेटा पायरेसी और डेटा पोचिंग केवल कानूनी या तकनीकी विषय नहीं, बल्कि भविष्य की ज्ञान-व्यवस्था से जुड़े प्रश्न हैं।

एक और महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि AI सत्य का निर्धारण नहीं करता; वह उपलब्ध जानकारी के आधार पर सबसे संभावित उत्तर प्रस्तुत करता है। सत्य की अंतिम कसौटी आज भी प्रयोग, प्रमाण और वैज्ञानिक सत्यापन ही हैं। यही कारण है कि ज्ञान की गुणवत्ता AI के भविष्य का सबसे महत्वपूर्ण आधार है। आज AI इंटरनेट पर उपलब्ध सामग्री से सीख रहा है, पर भविष्य की AI प्रणालियाँ केवल मनुष्यों द्वारा निर्मित ज्ञान से ही नहीं, बल्कि AI द्वारा तैयार की गई सामग्री से भी सीखेंगी। यदि इंटरनेट पर त्रुटिपूर्ण, पक्षपातपूर्ण या कृत्रिम सामग्री लगातार बढ़ती रही, तो भविष्य के AI मॉडल उसी सामग्री को सत्य

मानकर आगे प्रशिक्षित होंगे। इस प्रकार हम अनजाने में ऐसे दुष्चक्र में प्रवेश कर सकते हैं, जहाँ त्रुटियाँ भी ज्ञान की तरह आगे बढ़ने लगे। इसलिए यदि हम आज ज्ञान की गुणवत्ता और विश्वसनीयता की रक्षा नहीं करेंगे, तो भविष्य की कृत्रिम बुद्धिमत्ता भी उसी अनुपात में कमजोर होती जाएगी। यह केवल तकनीकी चुनौती नहीं, बल्कि वैज्ञानिक उत्तरदायित्व का भी प्रश्न है। इसी प्रकार डीपफेक, भ्रामक सूचना और AI द्वारा निर्मित यथार्थ प्रतीत होने वाली सामग्री सत्य और असत्य के बीच की रेखा को धुंधला कर रही है। भविष्य में सबसे महत्वपूर्ण कौशल केवल जानकारी प्राप्त करना नहीं, बल्कि उसकी विश्वसनीयता का परीक्षण करना होगा। साथ ही AI अनेक नियमित कार्यों को स्वचालित करेगा, जिससे रोजगार की प्रकृति भी बदलेगी। ऐसे समय में रचनात्मकता, आलोचनात्मक चिंतन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और नैतिक निर्णय पहले से अधिक महत्वपूर्ण होंगे। AI का भविष्य केवल उसकी तकनीकी क्षमता से नहीं, बल्कि इस बात से तय होगा कि मानव समाज ज्ञान, सत्य और उत्तरदायित्व की रक्षा कितनी गंभीरता से करता है।

भविष्य की दिशा : AI की नहीं, मानव बुद्धिमत्ता की परीक्षा

भारत आज विश्व के सबसे बड़े डिजिटल समाजों में से एक है, जहाँ कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विस्तार अभूतपूर्व गति से हो रहा है। डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना, तीव्र इंटरनेट विस्तार, डिजिटल भुगतान, बहुभाषी तकनीकों, स्टार्टअप संस्कृति और विशाल युवा जनसंख्या ने भारत को AI के विकास और उपयोग के लिए एक विशिष्ट अवसर प्रदान किया है। परंतु किसी भी तकनीकी क्रांति की सफलता इस बात से नहीं आँकी जाती कि उसने कितनी नई मशीनें या एल्गोरिद्म विकसित किए, बल्कि इस बात से कि उसने समाज को कितना अधिक ज्ञान-सम्पन्न, न्यायपूर्ण, सुरक्षित और आत्मनिर्भर बनाया।

कोई भी AI स्वयं प्रयोगशाला में प्रयोग नहीं करता, खेत में फसल नहीं उगाता, रोगी का नमूना एकत्र नहीं करता और प्रकृति का प्रत्यक्ष अवलोकन नहीं करता। वह उन्हीं वैज्ञानिक तथ्यों से सीखता है जिन्हें शोधकर्ता वर्षों के परिश्रम से उत्पन्न करते हैं। इसलिए यदि समाज केवल AI का उपयोगकर्ता बन गया और नए ज्ञान का सृजन कम होने लगा, तो भविष्य की AI भी सीखने के लिए विश्वसनीय सामग्री से वंचित हो जाएगी।

आने वाले वर्षों में किसी भी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति केवल उसकी आर्थिक क्षमता से नहीं, बल्कि उसके वैज्ञानिकों, विश्वसनीय ज्ञान, उत्तरदायी नीतियों और सुदृढ़ AI पारिस्थितिकी तंत्र से भी निर्धारित होगी। भारत के लिए चुनौती केवल AI का उपयोग करना नहीं, बल्कि भारतीय भाषाओं, जैव विविधता, स्वास्थ्य, कृषि और विज्ञान से जुड़े मौलिक एवं उच्च-गुणवत्ता वाले ज्ञान का सृजन करना भी है। भविष्य का नेतृत्व केवल बेहतर एल्गोरिद्म विकसित करने वाले देशों के हाथ में नहीं होगा, बल्कि उन समाजों के हाथ में होगा जो विश्वसनीय डेटा, मौलिक अनुसंधान और वैज्ञानिक सत्यनिष्ठा के माध्यम से AI के ज्ञान-आधार को समृद्ध करेंगे। भारत के लिए यह केवल तकनीकी प्रगति का

अवसर नहीं, बल्कि विश्व के ज्ञान-निर्माण में अग्रणी भूमिका निभाने का भी अवसर है।

सबसे बड़ा खतरा यह नहीं कि मशीनें मनुष्यों जैसी सोचने लगे; कहीं अधिक गंभीर संभावना यह है कि मनुष्य मशीनों की तरह सोचना प्रारम्भ कर दें- जहाँ जिज्ञासा की जगह त्वरित उत्तर, तर्क की जगह तैयार निष्कर्ष और चिंतन की जगह सुविधा ले ले। जिज्ञासा, कल्पनाशक्ति, संवेदनशीलता और नैतिक निर्णय ऐसे मानवीय गुण हैं जिन्हें कोई एल्गोरिद्म प्रतिस्थापित नहीं कर सकता। यही गुण मनुष्य को वैज्ञानिक बनाते हैं, केवल बुद्धिमान नहीं। AI उत्तर देने की गति बढ़ा सकता है, पर सही प्रश्न पूछने की क्षमता नहीं सिखा सकता। भविष्य में उत्कृष्ट वैज्ञानिक वही होगा जो AI से बेहतर उत्तर नहीं, बल्कि बेहतर प्रश्न प्राप्त कर सके। विज्ञान का आधार सदैव प्रश्न पूछना, प्रमाण खोजना और स्थापित धारणाओं को चुनौती देना रहा है। यदि भविष्य की पीढ़ियाँ केवल AI द्वारा दिए गए उत्तरों पर निर्भर होने लगे और प्रश्न पूछने की आदत खो दें, तो ज्ञान का विस्तार रुक जाएगा। इसलिए AI का युग वास्तव में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का नहीं, मानव बुद्धिमत्ता की परीक्षा का युग है। शायद भविष्य का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं होगा कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता कितनी आगे बढ़ी, बल्कि यह होगा कि उसके साथ आगे बढ़ते हुए क्या मनुष्य अपनी जिज्ञासा, स्वतंत्र चिंतन और सत्य की खोज को सुरक्षित रख सका।

AI का भविष्य केवल बेहतर एल्गोरिद्म से नहीं बनेगा; उसका भविष्य उन वैज्ञानिकों, शिक्षकों, चिकित्सकों, किसानों, अभियंताओं और लेखकों पर निर्भर करेगा जो प्रतिदिन नया, विश्वसनीय और मौलिक ज्ञान उत्पन्न कर रहे हैं। यदि ज्ञान-सृजन रुक गया, तो AI का विकास भी अंततः रुक जाएगा। AI उपलब्ध ज्ञान का विश्लेषण और पुनर्गठन कर सकता है, पर नया वैज्ञानिक ज्ञान स्वयं उत्पन्न नहीं करता। प्रत्येक खोज के पीछे वर्षों के प्रयोग, असफलताएँ, अवलोकन और मानवीय जिज्ञासा होती है। विज्ञान की सबसे बड़ी शक्ति उत्तर देना नहीं, बल्कि सही प्रश्न पूछना है। AI उत्तर देने की गति बढ़ा सकता है, पर सही प्रश्न पूछने की क्षमता नहीं। भविष्य का उत्कृष्ट वैज्ञानिक वह नहीं होगा जो AI से अधिक उत्तर जानता हो, बल्कि वह होगा जो AI से बेहतर प्रश्न पूछ सके।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव ज्ञान का विकल्प नहीं है; वह मानव ज्ञान की उत्तराधिकारी है। वह उतनी ही बुद्धिमान होगी, जितना विश्वसनीय ज्ञान हम उसके लिए छोड़कर जाएँगे। इसलिए AI के युग में सबसे बड़ी जिम्मेदारी बेहतर मशीनें बनाना नहीं,

बल्कि बेहतर ज्ञान का सृजन करना है। अंततः भविष्य का प्रश्न यह नहीं होगा कि AI कितना बुद्धिमान बना, बल्कि यह होगा कि AI के युग में मनुष्य अपनी जिज्ञासा, स्वतंत्र चिंतन और मानवीय संवेदनशीलता को कितना सुरक्षित रख पाया। आगे पढ़ने हेतु.

1. UNESCO. (2021). Recommendation on the Ethics of Artificial Intelligence. <https://www.unesco.org/en/legal-affairs/recommendation-ethics-artificial-intelligence>
2. OECD. (2019; Updated 2024). OECD AI Principles. <https://www.oecd.org/en/topics/ai-principles.html>
3. NITI Aayog. (2021). Approach Document for India: Part 1 – Principles for Responsible AI. <https://www.niti.gov.in/sites/default/files/2021-02/Responsible-AI-22022021.pdf>

डॉ. अमित यादव

वैज्ञानिक-घ

****लेख में व्यक्त विचार लेखक के व्यक्तिगत हैं**

शोध प्रकाशन के मुख्य हाइलाइट्स

गुहा ए, प्रसाद ए, अशोककुमार के, पाल पी, साहू पी, वाणी एम आर, लाल जी *
(2025) कॉम्प्लिमेंट C3 डेफिशियन्सी इनहिबिटर्स ऑस्टियोक्लास्ट डिफरेंसिएशन
एंड प्रिवेंट्स ओवरिएक्टोमी-इंड्युस्ड ऑस्टियोपोरोसिस। जर्नल ऑफ इम्यूनोलोजी।
अगस्त 2025. 214 (11): 3069-3082, vkaf180

सारांश -

रूमेटाइड आर्थराइटिस, ऑस्टियोआर्थराइटिस, हड्डी टूटने और पेरियोडोंटाइटिस जैसी कई बीमारियों में, जो हड्डियों के टिशू और हड्डी के माइक्रो-एनवायरनमेंट को प्रभावित करती हैं, कॉम्प्लिमेंट सिस्टम की पैथोमैकेनिस्टिक भूमिका को अच्छी तरह से पहचाना गया है। हड्डियों का होमियोस्टैसिस (संतुलन) लगातार रीमॉडलिंग से बना रहता है, जिसमें हड्डी को सोखने वाली या डीमिनरलाइज़ करने वाली ऑस्टियोक्लास्ट कोशिकाएं हड्डी के कैल्सीफिकेशन को हटाती हैं, और ऑस्टियोब्लास्ट कोशिकाएं नया बोन मैट्रिक्स जमा करती हैं। मुख्य कॉम्प्लिमेंट प्रोटीन C3 के बारे में बताया गया है कि यह एंडोक्राइन ऑसीफिकेशन, कार्टिलेज से हड्डी में बदलने की प्रक्रिया और हड्डी की लंबाई में वृद्धि को नियंत्रित करता है। ऑस्टियोक्लास्ट प्रीकर्सर कोशिकाओं (OCPs) से मल्टीन्यूक्लियेटेड ऑस्टियोक्लास्ट कोशिकाओं (हड्डी को सोखने वाली कोशिकाओं) के बनने में कॉम्प्लिमेंट प्रोटीन C3 की भूमिका और लंबी हड्डी के माइक्रो-आर्किटेक्चर और मजबूती में इसके योगदान के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं है। हमने दिखाया कि C3 ऑस्टियोक्लास्ट के बनने और बोन मैरो से बनी OCPs से मल्टीन्यूक्लियेटेड ऑस्टियोक्लास्ट के बनने को बढ़ावा देता है। वाइल्ड-टाइप (WT) OCPs से बने ऑस्टियोक्लास्ट की तुलना में, C3-/- चूहों की OCPs में TRAP (टार्गेट-रेसिस्टेंट एसिड फॉस्फेटेस), कैथेप्सिन K, कैल्सीटोनिन रिसेप्टर और RANK (न्यूक्लियर फैक्टर κB का रिसेप्टर एक्टिवेटर) अणुओं का ऑस्टियोक्लास्ट-संबंधित जीन एक्सप्रेशन कम था। WT चूहों की तुलना में C3-/- चूहों में फीमर (जांघ की हड्डी) की बोन मिनेरल डेंसिटी और हड्डी से जुड़े अन्य पैरामीटर काफी

अधिक थे। इसके अलावा, WT चूहों की तुलना में, C3-/- चूहे ओवेरिक्टॉमी (अंडाशय हटाने की सर्जरी) से होने वाले ऑस्टियोपोरोसिस से सुरक्षित थे; इसमें प्लीहा (spleen) में Foxp3+CD4+ T कोशिकाओं और प्लीहा व बोन मैरो दोनों में इंटरल्यूकिन-10 बनाने वाली B कोशिकाओं की संख्या में काफी वृद्धि देखी गई। दिलचस्प बात यह है कि C3 नॉकआउट चूहों में फंक्शनल ऑस्टियोक्लास्ट कोशिकाओं का बनना कम होता है, जिससे हड्डी का माइक्रो-आर्किटेक्चर मजबूत होता है; इससे पता चलता है कि हड्डी की सूजन वाली बीमारियों में कॉम्प्लिमेंट पाथवे को इलाज के लक्ष्य के तौर पर देखा जा सकता है।



जर्नल ऑफ इम्यूनोलॉजी
अगस्त, 2025; 214(11): 3069-3082
vkaf180



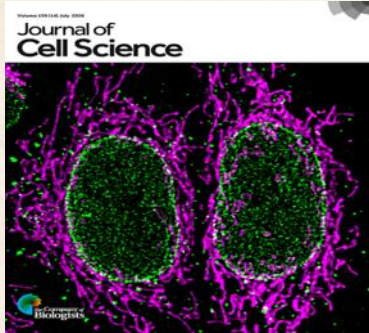
डॉ. गिरधारी लाल (वैज्ञानिक - जी)

ओलिवेरिया एल, जोसेफ जे*।

एन्युलेट लैमेली - एन अंडरएक्सप्लोअर्ड सेल्युलर स्ट्रक्चर। जर्नल ऑफ सेल सायन्स।
2026 जुलाई 15;139(14):jcs264633

सारांश

एन्युलेट लैमेली (AL), एंडोप्लाज्मिक रेटिकुलम (ER) के सब-डोमेन होते हैं जिनमें न्यूक्लियोपोरिन्स (Nups) का एक समूह होता है; ये वे प्रोटीन हैं जो न्यूक्लियर एनवेलप (NE) पर न्यूक्लियर पोर कॉम्प्लेक्स (NPCs) बनाते हैं। AL को कई तरह की कोशिकाओं में देखा गया है, जैसे कि ऊसाइट्स, स्पर्मेटिड्स, भ्रूण कोशिकाएं, सोमैटिक कोशिकाएं और ट्यूमर कोशिकाएं, साथ ही कई सेल लाइन्स में भी। कुछ अध्ययनों का सुझाव है कि AL, NE से बनते हैं, जबकि ड्रोसोफिला एग चेंबर में हुए अध्ययन बताते हैं कि AL घुलनशील Nups के अलग-अलग तरह से कंडेंस होने (इकट्ठा होने) से बन सकते हैं; इससे पता चलता है कि AL के बनने का तरीका कोशिका के प्रकार और कोशिका की फिजियोलॉजी के आधार पर अलग-अलग हो सकता है। हालांकि AL के कार्यों के बारे में बहुत कम जानकारी है, लेकिन आम तौर पर माना जाता है कि ये NPC के बनने और NE के होमियोस्टैसिस (संतुलन बनाए रखने) में भूमिका निभाते हैं। हालांकि, नए सबूत बताते हैं कि AL, न्यूक्लियोसाइटोप्लाज्मिक ट्रांसपोर्ट (NCT) और mRNA ट्रांसलेशन को कंट्रोल करने में भी अतिरिक्त भूमिका निभाते हैं। इसके अलावा, AL साइटोसोलिक प्रक्रियाओं जैसे कि ER-माइटोकॉन्ड्रियल कनेक्टिविटी, ER से Ca^{2+} का निकलना और खास प्रोटीनों के एक्टिवेशन को कंट्रोल कर सकते हैं। AL में बदलाव (रीमॉडलिंग) विकास, बीमारी और संक्रमण से भी जुड़े हैं, जो कई तरह की सेलुलर प्रक्रियाओं और स्थितियों में AL की अहम भूमिका पर और ज़ोर देते हैं।



जर्नल ऑफ सेल सायन्स। 2026
जुलाई 15; 139(14) : jcs264633



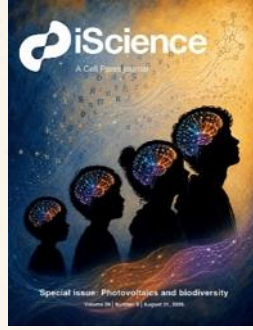
डॉ. जोमोन जोसेफ (वैज्ञानिक - जी)

दास जे, दत्ता एम, पिप्पाडपैली एस, जेथानी बी, सिंह एस बी, क्षिरसागर ए, जेना ए, कुमार वी, मजुमदार ए, सुब्रमण्यम डी *।

पैथोजेनिक म्युटेशन्स इन क्लैथ्रिन हेवी चेन डिसरप्ट आर्किटेक्चर एंड लर्निंग इन ड्रोसोफिला। आईसायन्स। जुलाई 17, 2026, 29 : 7116317.

सारांश

क्लैथ्रिन-मध्यस्थता वाली एंडोसाइटोसिस तंत्रिका विकास और कार्यप्रणाली के लिए आवश्यक है। हाल के अध्ययनों ने क्लैथ्रिन हेवी-चेन जीन में नए उत्परिवर्तनों को कई तंत्रिका विकास संबंधी विकारों से जोड़ा है। इस अध्ययन में, हमने ड्रोसोफिला मेलानोगास्टर में दो रोगजनक उत्परिवर्तन, L1047P और W1108R, का मॉडल तैयार किया और वेसिकल गतिशीलता, लिगेंड ग्रहण, तंत्रिका विकास और स्मृति निर्माण पर उनके प्रभावों का अध्ययन किया। हमारे डेटा से पता चलता है कि जब क्लैथ्रिन हेवी चेन के इन उत्परिवर्तित रूपों को सर्वव्यापी रूप से या केवल न्यूरोन्स में व्यक्त किया जाता है, तो उनकी अभिव्यक्ति से उत्तरजीविता में कमी और सीखने में दोष उत्पन्न होते हैं। इन उत्परिवर्तनों ने ऊष्मा तनाव की स्थितियों में वेसिकल गतिशीलता को भी बाधित किया और लिगेंड ग्रहण को कम किया। हालांकि लार्वा न्यूरोमस्क्युलर जंक्शन पर तंत्रिका आकारिकी और कार्यप्रणाली में कोई स्पष्ट दोष नहीं देखा गया, हमने सिनेप्स परिपक्वता से जुड़े मार्करों की अभिव्यक्ति में महत्वपूर्ण व्यवधान देखा। कुल मिलाकर, हमारा अध्ययन एक ऐसा मॉडल स्थापित करता है जो क्लैथ्रिन हेवी-चेन से संबंधित न्यूरोडेवलपमेंटल विकारों के सेलुलर आधार में अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकता है।



आईसायन्स। जुलाई 17, 2026, 29 : 7116317



डॉ. दीपा सुब्रमण्यम (वैज्ञानिक-एफ)



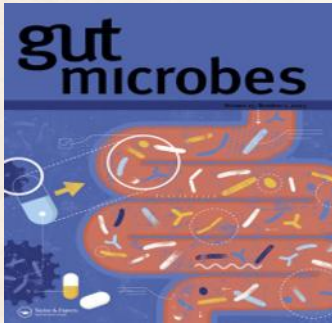
डॉ. अमिताभ मजुमदार (वैज्ञानिक-एफ)

एबेल ई आर, कुलकर्णी ए एस, मोंगाड डी एस, ओम एम आर, देवी एस आई, मिर बी ए, ओझरकर एस, सोनेनबर्ग ई डी, शौचे वाय एस, सोनेनबर्ग जे एल, धोत्रे डी पी *। गट माइक्रोबायोम्स ऑफ ट्राइबल कम्युनिटीज इन इंडिया वेरी विथ डेअरी एंड ग्रेन कंजप्शन। गट माइक्रोबज। जुलाई July 2026 ;18(1):2694242.

सारांश

बिना-इंडस्ट्रियल वाले समुदायों के गट माइक्रोबायोम में बहुत विविधता होती है और ये पुराने समय के सिम्बायोसिस (सहजीवन) जैसे ही होते हैं। इनका संबंध पुरानी सृजन वाली बीमारियों (क्रोनिक इंप्लेमेंटरी बीमारियों) के कम मामलों से है। फिर भी, दुनिया भर में, जिसमें भारत के आदिवासी समुदाय भी शामिल हैं, बिना-इंडस्ट्रियल वाले गट माइक्रोबायोम की विविधता के बारे में हमारी समझ अभी भी सीमित है। इस स्टडी में, हमने भारत के चार बायोजियोग्राफिक क्षेत्रों के आठ आदिवासी समुदायों के 76 वयस्कों के खान-पान और मल के माइक्रोबायोम में अंतर का सर्वे किया। इन समुदायों में पश्चिमी तट पर वारली; उत्तर-पूर्व दक्कन पठार में गोंड और मडिया; हिमालय की उत्तर-पूर्वी पहाड़ियों में काबुई (या रोंगमेई नागा); और उत्तर-पश्चिम ट्रांस-हिमालय में बाल्टी, बोटो, ब्रोकपा और पुरिग्पा शामिल थे। मल के नमूनों की मेटाजेनोमिक और 16S सीक्वेंसिंग से पता चला कि सभी समुदायों के गट माइक्रोबायोम में सेगाटेला (Segatella), एगाथोबैक्टर (Agathobacter) और फेकलिबैक्टेरियम (Faecalibacterium) मुख्य सदस्य थे। इनमें सेगाटेला कोपरी (जिसे पहले प्रीवोटेला कोपरी कहा जाता था) की मात्रा औसतन 25%-47% थी। ट्रांस-हिमालय के चार समुदायों में, जिनका खान-पान मुख्य रूप से डेयरी और तरह-तरह के अनाज पर आधारित था, गट अल्फा डाइवर्सिटी ज़्यादा थी और बीटा डाइवर्सिटी अलग तरह की थी। ऐसा इसलिए था क्योंकि उनमें बाइफिडोबैक्टीरियम (Bifidobacterium) की मात्रा ज़्यादा थी और उनमें रूमिनेंट (जुगाली करने वाले जानवरों) के माइक्रोबायोम जैसे टैक्सोन भी मौजूद थे। डेयरी का सेवन करने वाले समुदायों में मौजूद *B. adolescentis* के स्ट्रेन दुनिया भर के इंडस्ट्रियल स्ट्रेन से जेनेटिक रूप से अलग थे और उनमें ऐसे CAZyme थे जो डेयरी और अनाज के सेवन के कारण हुए बदलावों से मेल खाते थे। कुछ लोगों के गट माइक्रोबायोम में कैलिफोर्निया के लोगों के पहले से बताए गए सैंपल जैसी टैक्सोनामिक और फंक्शनल विशेषताएं थीं। इससे पता चलता है कि ग्लोबलाइज़ेशन

(वैश्वीकरण) का दबाव आदिवासी समुदायों के माइक्रोबायोम पर असर डाल सकता है। ये नतीजे गट समुदायों को बनाने में डेयरी पशुओं के न्यूट्रिशनल और माइक्रोबायोलॉजिकल योगदान को उजागर करते हैं और इस बात पर ज़ोर देते हैं कि जीवनशैली का बिना-इंडस्ट्रियल वाले गट माइक्रोबायोम की विविधता और काम करने के तरीके पर कितना बड़ा असर पड़ सकता है।



गट माइक्रोब्स। जुलाई 2026
; 18 (1) : 2694242



डॉ. धिरज धोत्रे (वैज्ञानिक-ई)

कुमार एस, भारती पी दुदेजा पी, शर्मा ए, आबनावे पी *।

इवोल्युशनरिली कंजर्व्ड पेप्टीडोग्लाइकैन रेकग्निशन प्रोटीन्स मिडिएट एंटीबैक्टीरियल इम्युनिटी इन प्लेनेरियन्स। आईसायन्स। अगस्त 21, 2026, 29 : 8116894.

सारांश

पेप्टीडोग्लाइकैन रिक्विशन प्रोटीन (PGRPs) ऐसे कंजर्व्ड पैटर्न रिक्विशन रिसेप्टर हैं जो वर्टेब्रेट्स और आर्थ्रोपोड्स में बैक्टीरिया का पता लगाने और उन्हें खत्म करने में मदद करते हैं, लेकिन लोफोट्रोकोज़ोअन्स में इनकी भूमिका के बारे में अभी ज़्यादा जानकारी नहीं है। यहाँ, हमने प्लेनेरियन *शिमिडिया मेडिटेरेनियन* (*Schmidtea mediterranea*) में सात PGRPs की पहचान और विशेषता बताई है, जिनमें तीन स्रावित (PGRP-S1-S3) और चार झिल्ली से जुड़े (PGRP-L1-L4) प्रोटीन शामिल हैं। स्ट्रक्चरल मॉडलिंग से कंजर्व्ड PGRP डोमेन आर्किटेक्चर का पता चला, और मॉलिक्यूलर डॉकिंग से पेप्टीडोग्लाइकैन-व्युत्पन्न लिगेण्ड्स के साथ इंटरैक्शन का अनुमान लगाया गया। **S. mediterranea** PGRPs (Smed-PGRPs) आंत और एपिडर्मिस में ज़्यादा मात्रा में पाए जाते हैं, और चोट लगने के बाद इनमें गतिशील रूप से बदलाव होता है। *स्टैफिलोकोकस ऑरियस* (*Staphylococcus aureus*) के संक्रमण से रास्ते और ऊतक-विशिष्ट PGRP एक्सप्रेसन प्रतिक्रियाएं शुरू हुईं। RNA इंटरफेरेंस के ज़रिए Smed-PGRPs को कम करने से बैक्टीरिया को खत्म करने की क्षमता पर बुरा असर पड़ा; PGRP-S3 की कमी के कारण पैथोजन के बने रहने और ऊतकों में फैलने की दर सबसे ज़्यादा बढ़ गई। कुल मिलाकर, ये नतीजे बताते हैं कि PGRPs प्लेनेरियन की एंटीबैक्टीरियल इम्युनिटी के लिए ज़रूरी हैं और बाइलेटरियन वंशावली में PGRP-मध्यस्थ एंटीबैक्टीरियल तंत्र के विकासवादी संरक्षण का समर्थन करते हैं।



आईसायन्स। अगस्त 21, 2026,
29 : 8116894.



डॉ. प्रसाद आबनावे (वैज्ञानिक-डी)

फेफड़ों के कैंसर से बचाव की वैज्ञानिक पहल

हर पल फेफड़े करते हैं एक महत्वपूर्ण कार्य,
 ऑक्सीजन पहुँचाकर जीवन को रखते हैं सक्रिय और स्वस्थ
 हर साँस में गैसों का होता है आदान-प्रदान,
 स्वस्थ फेफड़े हैं शरीर की आवश्यक पहचान
 तंबाकू और धूम्रपान से बनाएँ रखिए दूरी,
 क्योंकि तंबाकू के धुएँ में होते हैं हानिकारक कार्सिनोजेन्स
 जो क्षति पहुँचा हैं कोशिकाओं के DNA को
 और बढ़ाते हैं कैंसर के जोखिम को
 पैसिव स्मोकिंग भी जोखिम बढ़ा सकती है,
 इसलिए रखो धूम्रपान के धुएँ से दूरी
 वायु प्रदूषण, धूल और हानिकारक रसायनों से रहें सावधान,
 स्वस्थ जीवनशैली को ज़रूर अपनाएँ, शारीरिक रूप से रहें सक्रिय,
 परिवार में कैंसर का इतिहास हो या धूम्रपान का जोखिम,
 तो आवश्यक है चिकित्सक से उचित सलाह
 लगातार खाँसी, खाँसी में रक्त, सीने में दर्द,
 साँस फूलना या बिना कारण वजन कम होना
 इन संकेतों को हमेशा न करें नज़रअंदाज़,
 ऐसे लक्षणों की समय पर कराएँ जाँच ।
 हमेशा रहें सावधान और रखें ध्यान,
 कुछ मामलों में कैंसर की होती है जल्दी पहचान।

श्रीमती. प्रतिभा पाटील
 तकनीकी अधिकारी

अतीत की दृष्टि, आज का विज्ञान

आज का मानव कृत्रिम बुद्धिमत्ता, अंतरिक्ष यात्रा और जीनोम एडिटिंग के इस दौर में स्वयं को इतिहास का सबसे उन्नत मानव मानता है। लेकिन जब हम प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा के पन्नों को पलटते हैं, तो यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि क्या प्रकृति, खगोल और विज्ञान को समझने की हमारी यह जिज्ञासा वास्तव में आधुनिक है। इस विषय में दो अतिवादी दृष्टिकोणों से बचना अत्यंत आवश्यक है। पहली अति यह है कि हर पौराणिक कथा या धार्मिक वर्णन को आधुनिक विज्ञान का प्रत्यक्ष प्रमाण मान लिया जाए, और दूसरी अति यह है कि हजारों वर्ष पुरानी सोच को बिना समझे केवल अंधविश्वास कहकर खारिज कर दिया जाए। सच्चाई इन दोनों के मध्य में स्थित है, जहाँ हमारे पूर्वजों ने अपने समय की सीमाओं और उपलब्ध साधनों के भीतर अद्भुत वैज्ञानिक, गणितीय और व्यावहारिक पद्धतियाँ विकसित की थीं।

यदि हम खगोल विज्ञान और गणित के उदाहरणों पर दृष्टि डालें, तो प्राचीन ज्ञान की सटीकता आश्चर्यचकित करती है। गोस्वामी तुलसीदास कृत हनुमान चालीसा की प्रसिद्ध चौपाई "युग सहस्र योजन पर भानू, लील्यो ताहि मधुर फल जानू" में पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी का अद्भुत संकेत मिलता है। प्राचीन वैदिक मापन इकाइयों के अनुसार एक युग, सहस्र और योजन का गणितीय गुणन करने पर यह दूरी लगभग 9.6 करोड़ मील यानी करीब 15.36 करोड़ किलोमीटर निकलती है। आधुनिक नासा की गणनाओं के अनुसार भी सूर्य और पृथ्वी के बीच की औसत दूरी लगभग 14.96 से 15 करोड़ किलोमीटर ही है, जो बिना किसी आधुनिक टेलीस्कोप के की गई गणना की गहराई को दर्शाती है। इसी प्रकार गणित के क्षेत्र में आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त द्वारा शून्य और स्थान-मान प्रणाली का विकास कोई सामान्य बात नहीं थी। आज का पूरा कंप्यूटर विज्ञान, बाइनरी कोड, स्पेस नेविगेशन और डेटा प्रोसेसिंग इसी भारतीय गणितीय नींव पर टिका हुआ है।

इसी खगोलीय सटीकता और प्राचीन काल-गणना का एक और अद्भुत उदाहरण रामायण और रामसेतु के काल-निर्धारण में दिखाई देता है। वाल्मीकि रामायण में वर्णित ग्रह-नक्षत्रों की स्थितियों को जब आधुनिक प्लैनेटेरियम सॉफ्टवेयर में विश्लेषित किया जाता है, तो रामायण काल लगभग 5114 ईसा पूर्व (अर्थात् आज से करीब 7,100 वर्ष पहले) निर्धारित होता है। आश्चर्यजनक रूप से, भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण द्वारा रामसेतु के चूना पत्थरों और कोरल की कराई गई रेडियोकार्बन डेटिंग भी इस संरचना की आयु लगभग 7,000 से 9,000 वर्ष पूर्व ही

बताती है। खगोलीय साक्ष्यों और आधुनिक कार्बन डेटिंग का यह सटीक मिलान प्राचीन घटनाओं और संरचनाओं की ऐतिहासिकता को बल देता है।

चिकित्सा और जीव विज्ञान के क्षेत्र में भी प्राचीन भारत ने ऐसे विचार और तकनीकें प्रस्तुत कीं जिन्हें आज आधुनिक संदर्भों में देखा जा रहा है। महर्षि सुश्रुत को विश्व का पहला शल्य चिकित्सक माना जाता है, जिन्होंने सुश्रुत संहिता में माथे की त्वचा का उपयोग करके कटी हुई नाक का पुनर्निर्माण करने की सटीक विधि बताई। इस तकनीक को आधुनिक चिकित्सा इतिहास में "इंडियन मेथड" के नाम से जाना जाता है और यह आज की प्लास्टिक सर्जरी का मूल आधार बनी। इसी प्रकार उन्होंने मोतियाबिंद के इलाज के लिए कौचिंग तकनीक का प्रयोग किया। यदि हम महाभारत में कौरवों की जन्म कथा को देखें, तो एक ही पिंड को विभाजित करके विशेष घड़ों में संवर्धित करने का वर्णन आज की इन-विट्रो फर्टिलाइजेशन (आईवीएफ), स्टेम सेल टेक्नोलॉजी और टिशू कल्चर के सिद्धांतों से गहराई से मेल खाता है।

इसके अलावा, प्राचीन धातुकर्म, सिविल इंजीनियरिंग और खगोलीय कालखंड की अवधारणाएँ भी भारतीय वैज्ञानिक सोच का लोहा मानवाती हैं। दिल्ली का प्रसिद्ध लौह स्तंभ इसका जीवंत प्रमाण है, जो लगभग 1600 वर्षों से खुले आसमान के नीचे बिना जंग लगे खड़ा है। इसमें आयरन-हाइड्रोजन फास्फेट की एक ऐसी सूक्ष्म सुरक्षात्मक परत बनाई गई थी, जो आज के मैटेरियल साइंस के लिए भी अध्ययन का विषय है। धातुकर्म के साथ-साथ प्राचीन सिविल इंजीनियरिंग का एक बेहतरीन उदाहरण रामसेतु (Adam's Bridge) के निर्माण में दिखता है, जिसे आधुनिक संदर्भ में 'प्रागैतिहासिक समुद्री सेतु' माना जा सकता है। इसमें धनुषकोडी से श्रीलंका के बीच प्राकृतिक रूप से उथले मार्ग का सटीक चुनाव, कम घनत्व वाले तैरने वाले पत्थरों का प्रयोग—जो आज के उत्प्लावकता का सिद्धांत से मेल खाता है—और लहरों के वेग को कम करने के लिए तरंग-रोधी प्रणाली व परतदार समुच्चय संरचना तकनीक का उपयोग प्राचीन जल-इंजीनियरिंग की उत्कृष्ट सूझबूझ को दर्शाता है। वहीं दूसरी ओर, जहाँ मध्यकालीन यूरोपीय विचार ब्रह्मांड की आयु को केवल कुछ हजार वर्ष मानते थे, वहीं भारतीय दर्शन में समय को युगों और कल्पों में मापा गया। एक कल्प को लगभग 4.32 अरब वर्ष माना गया है, जो आधुनिक विज्ञान द्वारा बताई गई पृथ्वी की आयु 4.54 अरब वर्ष के अत्यंत निकट है।

निष्कर्षतः, यह कहना कि क्या हमारे पूर्वज हमसे आगे थे, केवल एक 'हाँ' या 'ना' का उत्तर नहीं हो सकता। सच्चाई यह है कि उनके पास आधुनिक प्रयोगशालाएँ, माइक्रोस्कोप, कंप्यूटर या सैटेलाइट नहीं थे, फिर भी उन्होंने केवल अवलोकन, ध्यान

और गहन गणितीय चिंतन के माध्यम से वे उत्तर खोजे जिनकी पुष्टि आज का आधुनिक विज्ञान कर रहा है। इसलिए हमें अपने अतीत को केवल अंधे अभिमान के रूप में देखने के बजाय वैज्ञानिक जिज्ञासा और प्रेरणा के स्रोत के रूप में देखना चाहिए। असली प्रश्न यह नहीं है कि वे हमसे कितने आगे थे, बल्कि प्रश्न यह है कि जब उन्होंने सीमित साधनों में इतना कुछ खोज लिया, तो आज असीमित तकनीकों और साधनों के साथ हम मानव सभ्यता को ज्ञान के किस नए शिखर पर ले जा सकते हैं।

तुषार शर्मा
कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता

विज्ञान (साइंस) के छात्र की चार अवस्थाएँ (रिसर्च, पहचान, जीने की कला और चिंतन)

परिचय: एक वैज्ञानिक का सफ़र कब शुरू होता है? -

अक्सर लोग सोचते हैं कि एक वैज्ञानिक का जीवन यूनिवर्सिटी की लैब में शुरू होता है, जहाँ वे माइक्रोस्कोप, DNA सीक्वेंसर और रिसर्च पेपर से घिरे होते हैं। मैं इससे सहमत नहीं हूँ। मेरा मानना है कि यह सफ़र बहुत पहले ही शुरू हो जाता है—शायद स्कूल की क्लास में, जहाँ कोई टीनएजर ध्यान से हर्बेरियम नोटबुक में पत्तियाँ दबाकर रखता है, मेंढक की बनावट का स्केच बनाता है, या घंटों तक उन छोटी-छोटी बारीकियों को देखता रहता है जिन पर ज़्यादातर लोगों का ध्यान नहीं जाता।

हमें ध्यान से देखना, सही-सही रिकॉर्ड करना, एक्सपेरिमेंट दोहराना और यह मानना सिखाया जाता है कि परफेक्शन के लिए समय चाहिए होता है। ये गतिविधियाँ हमें रिसर्च के लिए कहीं ज़्यादा तैयार कर रही थीं, जब विज्ञान हमें प्रकृति को देखना सिखा रहा था, तब हमें जीवन को समझना कौन सिखा रहा था? यह सवाल मेरे पूरे एकेडमिक सफ़र में—स्कूल से लेकर लाइफ़ साइंसेज़ में PhD तक—मेरे साथ रहा है और इसने विज्ञान, समाज और खुद को देखने के मेरे नज़रिए को आकार दिया है।

इस सफ़र के हम चार पहलूओं पर चर्चा करेंगे -

1. पहला पहलू: वह छात्र जो बारीकी से देखना सीखता है
2. दूसरा पहलू: वह शोधकर्ता जो त्याग करना सीखता है
3. तीसरा चेहरा: सफ़ेद कोट के पीछे की महिला
4. चौथा पहलू: समाज की नज़र में वैज्ञानिक

1.पहला पहलू: वह छात्र जो बारीकी से देखना सीखता है - विज्ञान की शिक्षा एक बहुत अच्छा अनुशासन सिखाती है। मैंने जो पहला हर्बेरियम तैयार किया, वह सिर्फ सूखे पौधों का संग्रह नहीं था। वह बारीकी से देखने का मेरा पहला सबक था। बायोलॉजी के डायग्राम बनाना सिर्फ परीक्षा की ज़रूरत नहीं थी; इसने मेरी आँखों को ऐसी बारीकियाँ देखने के लिए तैयार किया जिन्हें दूसरे शायद नज़रअंदाज़ कर देते। जब हम कॉलेज पहुँचे, तो उत्सुकता की जगह उत्साह ने ले ली। अचानक, बायोलॉजी जीवंत हो उठी। फिर भी, जब मैं प्रयोगशाला के कांच के बर्तनों के अंदर

के रंगों को समझने और उनकी सराहना करने की कोशिश कर रहा था, तो कभी-कभी मुझे यह ख्याल आता था कि कहीं मैं प्रयोगशाला के बाहर के रंगों को तो नहीं चूक रहा हूँ। हममें से बहुत से लोग कोशिकाओं को समझने में तो माहिर हो गए, लेकिन खुद को समझने के मामले में उलझन में ही रहे। यह बस उस संतुलन पर एक विचार है जिसे शिक्षा कभी-कभी सिखाना भूल जाती है।

2. दूसरा पहलू: वह शोधकर्ता जो त्याग करना सीखता है - रिसर्च लोगों को बदल देती है। PhD सिर्फ एक डिग्री से कहीं ज्यादा है। यह धीरे-धीरे इंसान की सोचने की शैली को बदल देती है। एक्सपेरिमेंट हमें मुश्किलों का सामना करना सिखाते हैं क्योंकि इनमें फेल होना कोई अनोखी बात नहीं, बल्कि आम बात हो जाती है। रिजेक्ट हुए मैनुस्क्रिप्ट सुधार के मौके बन जाते हैं। नेगेटिव नतीजे निराशा के बजाय कीमती जानकारी बन जाते हैं। हर अनसुलझा सवाल एक नई रिसर्च का दरवाज़ा खोलता है।

इस सफ़र के दौरान, मुझे एहसास हुआ कि विज्ञान सिर्फ मेरा पेशा नहीं रह गया था। यह मेरी पहचान बन गया था। मैं विज्ञान की सोच में पूरी तरह डूब गयी थी—यह मानना कि हर सवाल के लिए सबूत चाहिए और हर नतीजे के लिए पक्का प्रमाण ज़रूरी है। लेकिन ज़िंदगी हमेशा विज्ञान की तरह नहीं चलती। रिश्तों का विश्लेषण विज्ञान के आधार पर नहीं किया जा सकता। परिवार को किसी अधूरे प्रयोग की तरह अनिश्चित काल के लिए टाला नहीं जा सकता। मानसिक स्वास्थ्य को हमेशा किसी और सफल प्रकाशन से ठीक नहीं किया जा सकता। पहली बार, मैंने खुद से यह सवाल पूछना शुरू किया कि क्या मैंने विज्ञान के दर्शन को सीखने में अपनी सारी ऊर्जा लगा दी, जबकि जीने के दर्शन को नज़रअंदाज़ कर दिया।

3. तीसरा चेहरा: सफ़ेद कोट के पीछे की महिला - कई महिलाओं के लिए, वैज्ञानिक सफ़र में जटिलता की एक और परत भी होती है। रिसर्च में करियर अक्सर बीस साल की उम्र के शुरुआती दौर में शुरू होता है। भारत में PhD पूरी करने में अक्सर पाँच या उससे ज्यादा साल लग जाते हैं। जब तक कई महिलाएँ अपनी डॉक्टोरल ट्रेनिंग पूरी करती हैं, तब तक वे तीस साल की उम्र के करीब पहुँच चुकी होती हैं—यह वही समय होता है जब समाज अक्सर रिसर्च से हटकर दूसरे सवाल पूछने लगता है। कई महिलाओं को दो तरह की समय-सीमाओं (टाइमलाइन) के बीच संतुलन बनाना पड़ता है। एक है प्रयोगों, प्रकाशनों और करियर में आगे बढ़ने की वैज्ञानिक समय-सीमा। दूसरी है शादी, गर्भावस्था और परिवार की उम्मीदों से जुड़ी जैविक और सामाजिक समय-सीमा। दोनों में से कोई भी समय-सीमा गलत नहीं है।

चुनौती यह है कि दोनों को एक साथ कैसे संभाला जाए। क्या मैं अपने साइंटिफिक सपनों को छोड़े बिना एक समर्पित माँ/अभिभावक बन सकती हूँ? क्या समाज इन दोनों उपलब्धियों को बराबर सम्मान दे सकता है? शायद इसका कोई एक जवाब कभी न मिल पाए। हर महिला अपना जवाब खुद तय करती है।

4. **चौथा पहलू: समाज की नज़र में वैज्ञानिक**— सालों की साइंटिफिक ट्रेनिंग के बाद सबसे हैरान करने वाले पलों में से एक तब आता है—जब हम लैब से बाहर निकलते हैं। समाज अक्सर काबिलियत को अलग तरह से मापता है। एक साइंटिस्ट को प्रोटीन को एनालाइज़ करना, मॉलिक्यूलर पाथवे को समझना, या जीनोमिक डेटा को समझना आ सकता है। लेकिन इनसे एक ज़रूरी सच्चाई पता चलती है। वैज्ञानिक महारत का मतलब अपने-आप रोज़मर्रा की ज़िंदगी के हुनर में बदलना नहीं होता। और न ही रोज़मर्रा के हुनर से वैज्ञानिक काम में बरसों की मेहनत कम होनी चाहिए। चुनौती विज्ञान और ज़िंदगी के बीच किसी एक को चुनने की नहीं है। चुनौती यह समझने की है कि दोनों पर ध्यान देना ज़रूरी है। शायद जो वैज्ञानिक बरसों तक सेल्स (कोशिकाओं) की स्टडी में बिताते हैं, उन्हें संगीत सीखने, घूमने-फिरने, गाड़ी चलाने, खाना पकाने, पेंटिंग करने या बस रिसर्च से अलग बातचीत का मज़ा लेने के लिए भी समय निकालना चाहिए। एक पूरी ज़िंदगी के लिए सिर्फ़ प्रोफेशनल कामयाबी से कहीं ज़्यादा सीखने की ज़रूरत होती है।

निष्कर्ष: जीने की कला सीखना

विज्ञान ने इंसानियत को असाधारण ज्ञान दिया है। इसने DNA की संरचना का पता लगाया है, जीनोम का नक्शा तैयार किया है, दूर की आकाशगंगाओं की खोज की है और जीवन बचाने वाली दवाइयाँ बनाई हैं। विज्ञान ने मुझे भी बदल दिया है। इसने मुझे जिज्ञासा, धैर्य, अनुशासन, मुश्किलों से उबरने की क्षमता और मान्यताओं पर सवाल उठाने का साहस सिखाया है। इसके लिए मैं हमेशा शुक्रगुजार रहूँगा।

फिर भी अगर मैं साइंटिफिक एजुकेशन को रीडिज़ाइन कर पाती, तो मैं एक और सब्जेक्ट जोड़ती। मॉलिक्यूलर बायोलॉजी के साथ-साथ, मैं इमोशनल रेजिलिएंस भी सिखाती। लैबोरेटरी टेक्नीक के साथ-साथ, मैं वर्क-लाइफ बैलेंस भी सिखाती। एक्सपेरिमेंटल डिज़ाइन के साथ-साथ, मैं रिश्तों, हेल्थ, क्रिएटिविटी और सेल्फ-कम्पैशन की इंपॉर्टेंस भी सिखाती। क्योंकि विज्ञान का मकसद सिर्फ़ कामयाब रिसर्च बनाना नहीं है। इसका मकसद ऐसे समझदार इंसान तैयार करना है जो ज्ञान का समझदारी से इस्तेमाल करें और एक सार्थक ज़िंदगी जिएं।

शायद हम जो सबसे बड़ा प्रयोग करेंगे, वह किसी प्रयोगशाला के अंदर नहीं होगा।
वह प्रयोग है—ज्ञान की खोज और जीने की कला के बीच संतुलन बनाना सीखना।

डॉ. ए. एल्लकिया
एम. के. भान फेलो

आखिर किसके लिए दौड़ रहा हूँ?

आज सुबह अलार्म की आवाज़ से जागे। जल्दी-जल्दी तैयार हुए और पहली नज़र मोबाइल पर पड़ी। अनेक संदेश, लंबित कार्य, बिल-और कुछ अधूरे सपने-सब आपका इंतज़ार कर रहे थे। और एक बार फिर, अनजाने में, आप दौड़ने लगे।

पर रुकिए...

क्या कभी आपने खुद से पूछा है- “मैं आखिर किसके लिए दौड़ रहा हूँ?”

बचपन में लगता था, अच्छे अंक आएँगे तो जीवन अच्छा होगा।

फिर नौकरी लगेगी तो सब ठीक होगा, शादी होगी तो जीवन पूरा होगा,

घर आएगा तो संतोष मिलेगा, गाड़ी आएगी तो प्रतिष्ठा बढ़ेगी,

और बच्चे बड़े हो जाएँगे तो चिंताएँ समाप्त होंगी।

पर...

एक सपना पूरा होता है, तो दूसरा सामने खड़ा हो जाता है।

एक लक्ष्य हासिल होता है, तो दूसरा बुलाने लगता है।

और इसी तरह पूरा जीवन दौड़ता ही चला जाता है।

हम निरंतर कुछ न कुछ पाने के प्रयास में लगे रहते हैं;

पर अक्सर इन्हीं प्रयासों में हम स्वयं को ही खो बैठते हैं।

इतने उलझ जाते हैं कि स्वयं के लिए समय निकालना भी भूल जाते हैं।

बैंक खाते का बैलेंस मालूम होता है, पर मन का बैलेंस नहीं मालूम।

घर की कीमत मालूम होती है, पर रिश्तों की कीमत कभी नहीं मापी।

गाड़ी की सर्विस समय पर करवाते हैं,

पर अपने शरीर और मन की सर्विस कितने वर्षों से नहीं करवाई।

बैंक खाते का बैलेंस बढ़ते हुए, कहीं जीवन का संतुलन तो नहीं बिगड़ रहा?

—यह प्रश्न पूछना कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

रात को सोने से पहले स्वयं से पूछिए—

“अगर आज मेरा आखिरी दिन होता,

तो क्या मैं गर्व से कह पाता—

‘हाँ, मैंने अपनी मर्जी से जिया’?”

या फिर कुछ अधूरा रह गया होता?

अधिकांश लोग मृत्यु के दिन नहीं मरते;

वे अपने सपनों की मृत्यु के दिन मरना शुरू कर देते हैं।

जब वे स्वयं को भूल जाते हैं,

यह अध्याय उत्तर देने के लिए नहीं, प्रश्न पूछने के लिए है।
क्योंकि सही प्रश्न ही महान जीवन की यात्रा का आरंभ होता है।
हर बड़ा बदलाव एक ईमानदार प्रश्न से शुरू होता है।
और हर सार्थक यात्रा—स्वयं को पहचानने से।
आज से आपकी यात्रा शुरू होती है—
पैसा कमाने के लिए नहीं, बल्कि स्वयं को खोजने के लिए।
क्योंकि दुनिया जीतने से पहले, मनुष्य को स्वयं को जीतना अनिवार्य है।
और स्वयं को जीतने वाला ही जीवन को सच्चे अर्थों में जीत सकता है।
क्या आप परिवर्तन के लिए तैयार हैं?
यदि आपका उत्तर 'हाँ' है, तो यह यात्रा आपके लिए ही है।
हर शब्द, हर विचार, हर पंक्ति—आपके भीतर उस आवाज़ के लिए,
जो कभी दबी, कभी कुचली गई, पर कभी मरी नहीं।
यह केवल एक लेख नहीं, बल्कि आपके जीवन की दिशा बदलने का एक सशक्त
माध्यम है। आपके विचार हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं।
**इस लेख के संबंध में आपकी कोई प्रतिक्रिया, सुझाव या प्रश्न हो तो हमसे अवश्य
संपर्क करें।
जब वे दूसरों की अपेक्षाओं के लिए जीते हैं,
जब वे समाज को दिखाने के लिए जीते हैं,
और जब वे स्वयं से यह प्रश्न पूछना ही भूल जाते हैं—
“मैं वास्तव में कौन हूँ?”
कुछ लोग जीवनभर सफलता के पीछे दौड़ते हैं,
और अंत में पाते हैं कि वे स्वयं से ही दूर चले गए।

श्री. सुनिल रामभाऊ कचरे
आहरण एवं संवितरण अधिकारी

युद्धों की बढ़ती आग और जलवायु परिवर्तन: एक अनदेखा संकट

हाल के वर्षों में विश्व जिन युद्धों का साक्षी बना है: विशेषकर रूस-यूक्रेन युद्ध तथा मध्य-पूर्व में इज़राइल, ईरान और अमेरिका के बीच बढ़ते सैन्य तनाव, उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि युद्ध केवल मानव जीवन, अर्थव्यवस्था और वैश्विक शांति को ही प्रभावित नहीं करते, बल्कि पृथ्वी के पर्यावरण और जलवायु को भी गहराई से प्रभावित करते हैं। वैज्ञानिकों और पर्यावरण विशेषज्ञों का मानना है कि आधुनिक युद्ध जलवायु परिवर्तन को तेज़ करने वाले महत्वपूर्ण, लेकिन अपेक्षाकृत कम चर्चित कारकों में से एक हैं।

सबसे चिंताजनक तथ्य यह है कि अधिकांश देशों के सैन्य अभियानों से होने वाले कार्बन उत्सर्जन को आधिकारिक जलवायु आँकड़ों में पूरी तरह शामिल नहीं किया जाता। परिणामस्वरूप, युद्धों की वास्तविक पर्यावरणीय कीमत अक्सर दुनिया की नज़रों से ओझल रह जाती है। हालिया विश्लेषणों के अनुसार, अमेरिका-इज़राइल-ईरान संघर्ष के केवल पहले 14 दिनों में ही लगभग 50 लाख टन कार्बन डाइऑक्साइड (CO₂) का उत्सर्जन हुआ। इसी प्रकार, गाज़ा युद्ध के शुरुआती महीनों में लगभग 3.32 करोड़ टन CO₂ समतुल्य उत्सर्जित हुआ, जो विश्व के लगभग 26 देशों के पूरे एक वर्ष के कुल उत्सर्जन से भी अधिक है। यह उत्सर्जन केवल बमबारी से नहीं, बल्कि लड़ाकू विमानों, युद्धपोतों, टैंकों, मिसाइलों, सैन्य वाहनों, हथियारों के निर्माण, सैन्य अभियानों तथा बाद में होने वाले पुनर्निर्माण कार्यों से भी उत्पन्न होता है। ध्वस्त इमारतों के मलबे को हटाने और नए शहरों एवं बुनियादी ढाँचे के निर्माण में भी भारी मात्रा में ऊर्जा और संसाधनों की आवश्यकता होती है, जिससे कार्बन उत्सर्जन और बढ़ जाता है।

युद्धों का प्रभाव वैश्विक ऊर्जा सुरक्षा पर भी गंभीर रूप से पड़ता है। रूस-यूक्रेन युद्ध के बाद यूरोप में प्राकृतिक गैस की आपूर्ति बाधित हुई, जिससे कई देशों को अस्थायी रूप से कोयले से चलने वाले बिजली संयंत्र दोबारा चालू करने पड़े। वहीं मध्य-पूर्व में इज़राइल-ईरान तनाव और स्ट्रेट ऑफ़ होर्मुज़ के आसपास अस्थिरता ने तेल और गैस की वैश्विक आपूर्ति को लेकर चिंताएँ बढ़ा दी हैं। इस जलमार्ग से विश्व के समुद्री तेल व्यापार का लगभग 20 प्रतिशत गुजरता है। यदि यहाँ आपूर्ति बाधित होती है, तो अनेक देश ऊर्जा संकट से बचने के लिए फिर से जीवाश्म ईंधनों

विशेषकर कोयला, तेल और तरलीकृत प्राकृतिक गैस पर अधिक निर्भर हो सकते हैं। इससे वैश्विक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन बढ़ने की आशंका रहती है और स्वच्छ ऊर्जा की ओर बढ़ता वैश्विक संक्रमण भी धीमा पड़ सकता है। युद्धों का एक अप्रत्यक्ष लेकिन गंभीर प्रभाव वैश्विक खाद्य सुरक्षा पर भी पड़ता है। रूस और यूक्रेन गेहूँ, मक्का तथा सूरजमुखी तेल के प्रमुख निर्यातक रहे हैं। युद्ध के कारण आपूर्ति श्रृंखला बाधित होने से खाद्यान्न की कीमतें बढ़ीं और कई विकासशील देशों में खाद्य संकट गहरा गया। इसी प्रकार, उर्वरकों और ईंधन की बढ़ती कीमतों ने कृषि उत्पादन को भी प्रभावित किया, जिसका प्रभाव आज भी वैश्विक स्तर पर महसूस किया जा रहा है। जब युद्ध के कारण कृषि भूमि नष्ट होती है या किसान अपने खेतों से विस्थापित होते हैं, तो इसका प्रभाव केवल संबंधित देश तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वैश्विक खाद्य आपूर्ति और कीमतों पर भी पड़ता है।

इसके अतिरिक्त, युद्ध जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए आवश्यक वैश्विक सहयोग को भी कमजोर करते हैं। जब राष्ट्र अपनी आर्थिक और राजनीतिक प्राथमिकताओं को सुरक्षा तथा सैन्य शक्ति की ओर मोड़ते हैं, तब पर्यावरण संरक्षण और जलवायु कार्रवाई के लिए उपलब्ध संसाधन और अंतरराष्ट्रीय सहयोग प्रभावित हो सकते हैं। हथियारों पर बढ़ता खर्च, पुनर्निर्माण की आवश्यकता और ऊर्जा संकट, ये सभी परिस्थितियाँ उन संसाधनों को कम कर सकती हैं जिन्हें नवीकरणीय ऊर्जा, जल संरक्षण, वन संरक्षण और जलवायु अनुकूलन जैसे क्षेत्रों में लगाया जा सकता था।

स्पष्ट है कि आधुनिक युद्ध केवल सीमाओं को नहीं बदलते, बल्कि पृथ्वी की जलवायु, ऊर्जा व्यवस्था, जैव विविधता और खाद्य सुरक्षा को भी गहराई से प्रभावित करते हैं। युद्धों की कीमत केवल सैनिकों और नागरिकों की जान से नहीं चुकाई जाती; इसकी कीमत हमारी नदियाँ, जंगल, मिट्टी, हवा और आने वाली पीढ़ियाँ भी चुकाती हैं। यदि विश्व समुदाय ने युद्धों की पर्यावरणीय लागत को गंभीरता से नहीं लिया, तो जलवायु परिवर्तन से लड़ने के लिए किए जा रहे वैश्विक प्रयास लगातार कमजोर पड़ते जाएंगे।

इसलिए आज आवश्यकता केवल युद्धविराम की नहीं, बल्कि ऐसी समग्र वैश्विक नीतियों की है जो शांति के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण को भी समान प्राथमिकता दें। देशों को सैन्य संघर्षों के पर्यावरणीय प्रभावों को मापने और सार्वजनिक करने के लिए पारदर्शी व्यवस्था विकसित करनी चाहिए। अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं को युद्ध के दौरान पर्यावरणीय क्षति को रोकने तथा युद्ध समाप्त होने के बाद प्रभावित

क्षेत्रों के पारिस्थितिक पुनर्वास के लिए ठोस कदम उठाने चाहिए। साथ ही, वैश्विक समुदाय को कूटनीति, संवाद और सहयोग के माध्यम से संघर्षों को रोकने की दिशा में अधिक गंभीर प्रयास करने होंगे।

निष्कर्ष

आज के युद्ध केवल देशों के बीच की लड़ाई नहीं हैं; वे हमारी पृथ्वी के भविष्य के विरुद्ध भी एक संघर्ष बन चुके हैं। जिस प्रकार जलवायु परिवर्तन सीमाओं को नहीं पहचानता, उसी प्रकार युद्धों से होने वाला पर्यावरणीय विनाश भी किसी एक देश तक सीमित नहीं रहता। एक देश में होने वाला संघर्ष दूसरे देशों की ऊर्जा सुरक्षा, खाद्य व्यवस्था और जलवायु को प्रभावित कर सकता है। यदि मानवता ने समय रहते शांति, पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास को प्राथमिकता नहीं दी, तो आने वाली पीढ़ियाँ एक ऐसे ग्रह की उत्तराधिकारी होंगी जो अधिक गर्म, अधिक प्रदूषित और अधिक असुरक्षित होगा। हमें यह समझना होगा कि पृथ्वी पर शांति और पर्यावरण की सुरक्षा एक-दूसरे से अलग लक्ष्य नहीं हैं, बल्कि एक ही साझा भविष्य की दो अनिवार्य शर्तें हैं।

"युद्धों में जीतने वाला कोई नहीं होता, अंततः हार मानवता और प्रकृति दोनों की होती है।"

श्री. तुषार शर्मा
कनिष्ठ अनुसंधान अध्ययता

दिल और दिमाग का संवाद

दिल: कुछ शब्द हैं, जो बरसों से मेरी धड़कनों में कैद हैं। डरता हूँ, यदि उन्हें आवाज़ दे दी, तो कहीं लोग मुझे ही खारिज न कर दें।

दिमाग: हो सकता है, हर कोई तुम्हें समझ न सके। पर याद रखो, मौन कभी घाव नहीं भरता। विकास उन रास्तों पर जन्म लेता है, जहाँ प्रश्न पूछे जाते हैं, जहाँ संवाद साँस लेता है।

दिल: लेकिन, अगर मेरी सच्चाई किसी की मुस्कान छीन ले? अगर सच बोलने की कीमत अपने ही रिश्तों का बिखर जाना हो?

दिमाग: सच से मुँह मोड़ लेने पर तूफान नहीं रुकते। वे बस भीतर घर बना लेते हैं। संवाद से दूर रहकर तुम अपने ही पूर्वाग्रहों की दीवारों में कैद हो जाते हो, जहाँ न स्वयं तक पहुँच पाते हो, न किसी और तक।

दिल: क्या कोई ऐसी जगह नहीं हो सकती, जहाँ असहमति भी सम्मान से जन्म ले? जहाँ शब्द ज़ख्म नहीं, पुल बन जाएँ?

दिमाग: हो सकती है। पर ऐसी जगहें किस्मत से नहीं मिलतीं। उन्हें विश्वास की ईंटों से, संवेदनाओं के गारे से, और धैर्य के हाथों से धीरे-धीरे बनाया जाता है। जहाँ हर आवाज़ सुनी जाती है, और हर प्रश्न को डर नहीं, स्थान मिलता है।

दिल: शायद आज इंसान को रोटि से कम नहीं, ऐसे संवादों की ज़रूरत है।

दिमाग: तो आओ, हम ऐसी दुनिया रचें जहाँ बोलने से पहले डर नहीं, संवेदना जन्म ले। जहाँ सुनने से पहले फैसले नहीं, समझने की इच्छा जन्म ले।

जहाँ मतभेद रिश्तों का अंत नहीं, समझ की शुरुआत बनें।

और जहाँ हर दिल को इतना भरोसा हो कि वह बिना डरे कह सके—

"यह हूँ मैं।"

श्री. शुभम यादव,

आईसीएमआर-वरिष्ठ अनुसंधान अध्ययता

‘दुमदुमली पंढरी’ - आषाढी वारी 2026: एक अविस्मरणीय आध्यात्मिक अनुभव

"ज्ञानोबा माऊली... तुकाराम!" इन जयघोषों के साथ जब लाखों कंठ एक स्वर में गूंजते हैं, तब पंढरपुर केवल एक तीर्थक्षेत्र नहीं रह जाता, बल्कि श्रद्धा, समर्पण और मानवता का विराट उत्सव बन जाता है। वर्ष 2026 की आषाढी वारी में सहभागी होने का सौभाग्य मेरे जीवन के उन अनुभवों में से है, जिन्हें शब्दों में पूरी तरह व्यक्त करना कठिन है।

आषाढी वारी महाराष्ट्र की लगभग आठ शताब्दियों पुरानी संत परंपरा का जीवंत प्रतीक है। संत ज्ञानेश्वर महाराज की आळंदी और संत तुकाराम महाराज की देहू से निकलने वाली पालखियाँ प्रतिवर्ष लाखों वारकरियों के साथ पंढरपुर की ओर प्रस्थान करती हैं। यह यात्रा केवल भगवान विठ्ठल के प्रति भक्ति का पर्व नहीं, बल्कि समता, सेवा, अनुशासन, त्याग, सामूहिकता और मानवता का संदेश देने वाली अद्वितीय सांस्कृतिक धरोहर है। वारी में जाति, वर्ग और सामाजिक भेदभाव पीछे छूट जाते हैं और प्रत्येक वारकरी एक-दूसरे को प्रेम से 'माऊली' कहकर संबोधित करता है। आळंदी से पंढरपुर तक लगभग **250 किलोमीटर** की यह पदयात्रा धूप, बारिश और थकान की परवाह किए बिना विठ्ठल दर्शन की आस में पूरी की जाती है। पालखी और दिंडी के साथ हर कदम पर "ज्ञानोबा माऊली... तुकाराम!" और "जय जय राम कृष्ण हरी" का जयघोष गूंजता है। सामूहिक भोजन, सेवा, भजन और एक-दूसरे की सहायता वारी की सामूहिक भावना और मानवता का सुंदर दर्शन कराते हैं। वास्तव में, वारी की यह दूरी केवल किलोमीटरों में नहीं मापी जा सकती—आळंदी से पंढरपुर तक का मार्ग पैरों से तय होता है, लेकिन उसकी वास्तविक यात्रा मन के भीतर होती है।

इस महान संत परंपरा के प्रमुख आधारस्तंभ संत ज्ञानेश्वर महाराज, जिन्हें ज्ञानदेव और माऊली के नाम से भी जाना जाता है, 13वीं शताब्दी के महान संत, कवि, योगी और तत्त्वज्ञ थे। अल्पायु में ही उन्होंने मराठी भाषा और भारतीय अध्यात्म को नई दिशा प्रदान की। ज्ञानेश्वरी के माध्यम से उन्होंने भगवद्गीता के गहन दर्शन को लोकभाषा में सरलता से प्रस्तुत किया। *अमृतानुभव* जैसे ग्रंथ में उन्होंने आध्यात्मिक अनुभूति और आत्मबोध की गहराई को अभिव्यक्त किया। उनकी शिक्षाओं में ज्ञान, भक्ति, आत्मबोध और मानव-समता का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

इसी संत परंपरा को आगे बढ़ाने वाले संत तुकाराम महाराज 17वीं शताब्दी के महान संत, कवि और वारकरी संप्रदाय के प्रमुख स्तंभ थे। पुणे जिले के देहू में जन्मे संत तुकाराम भगवान विठ्ठल के अनन्य भक्त थे। उनके अभंगों ने भक्ति को सामान्य जनजीवन से जोड़ा। उनकी वाणी में सत्य, करुणा, सदाचार, सामाजिक समानता और ईश्वर के प्रति निष्कपट प्रेम का संदेश मिलता है। संत ज्ञानेश्वर की ज्ञानमय भक्ति और संत तुकाराम की सहज लोकभक्ति आज भी वारी की आत्मा में स्पंदित होती है।

आळंदी और देहू से पंढरपुर तक की यह यात्रा केवल पैरों से तय किया जाने वाला मार्ग नहीं, बल्कि आत्मा से परमात्मा तक की यात्रा है। लाखों वारकरियों के सामूहिक कदम, हाथों में भगवा पताका, मुख पर विठ्ठल का नाम और हृदय में माऊली के प्रति श्रद्धा-वारी को भारत की अनूठी लोक-सांस्कृतिक परंपराओं में विशिष्ट स्थान प्रदान करते हैं। “ज्ञानोबा माऊली... तुकाराम!” के जयघोष से जब वातावरण गूँज उठता है, तब पंढरपुर केवल एक तीर्थक्षेत्र नहीं रह जाता, बल्कि श्रद्धा, समर्पण और मानवता का विराट उत्सव बन जाता है।

पंढरपुर का आध्यात्मिक महत्व भक्त पुंडलिक की कथा से भी जुड़ा है। मान्यता है कि माता-पिता की सेवा में पूर्णतः समर्पित पुंडलिक की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु स्वयं पंढरपुर आए और उनके आग्रह पर एक ईंट पर खड़े होकर प्रतीक्षा करने लगे। यही विठ्ठल का स्वरूप आगे चलकर भक्तों के आराध्य भगवान पांडुरंग के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। कमर पर दोनों हाथ रखकर विट पर खड़े विठ्ठल का स्वरूप सेवा, धैर्य, प्रतीक्षा और भक्तवत्सलता का अद्भुत संदेश देता है।

वर्ष 2026 की आषाढ़ी एकादशी के दिन पंढरपुर में उपस्थित रहकर वारी में सहभागी होने का सौभाग्य मेरे लिए जीवन के उन अनुभवों में से एक रहा, जिन्हें शब्दों में पूरी तरह व्यक्त करना कठिन है। आषाढ़ी एकादशी की पावन बेला में प्रातः लगभग चार बजे जब मैंने पंढरपुर की धरती पर कदम रखा, तब मन में एक अनोखी अनुभूति हुई—मानो स्वयं विठ्ठल ने अपने धाम में बुलाया हो। शहर की गलियों से लेकर मुख्य मार्गों तक हर ओर हरिनाम का स्वर सुनाई दे रहा था। टाळ-मृदंग की लय, अभंग-भजन और लाखों श्रद्धालुओं के मुख से निकलता “विठ्ठल... विठ्ठल...” वातावरण को अलौकिक बना रहा था। प्रभात होते ही चंद्रभागा नदी के तट पर पहुँचने का सौभाग्य मिला। उगते सूर्य की स्वर्णिम किरणें जब शांत जल पर बिखरने लगीं, तब दृश्य अवर्णनीय हो उठा। स्नान करते श्रद्धालु, सूर्य को अर्घ्य अर्पित करते वारकरी और मंद स्वर में गूँजता हरिनाम—ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो प्रकृति और

अध्यात्म एकाकार हो गए हों। चंद्रभागा में स्नान मेरे लिए केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि और अंतर्मन को निर्मल करने का अनुभव था। इसके बाद पालखी और दिंडी का अनुशासन देखकर मन अभिभूत हो गया। हजारों-लाखों लोग एक साथ चल रहे थे, फिर भी उनमें अद्भुत अनुशासन और आत्मसंयम दिखाई दे रहा था। भोजन, विश्राम, चिकित्सा और स्वच्छता की व्यवस्था में लगे हजारों स्वयंसेवकों का निस्वार्थ सेवाभाव इस परंपरा की वास्तविक शक्ति का परिचायक है। वारी हमें सिखाती है कि जब उद्देश्य सामूहिक हो और मन में सेवा की भावना हो, तब विशाल जनसमूह भी अनुशासन और सौहार्द के साथ आगे बढ़ सकता है।

भगवान विठ्ठल के दर्शन का क्षण मेरे लिए इस यात्रा का सबसे भावपूर्ण पल था। वर्षों से सुना हुआ संत तुकाराम महाराज का अभंग—

*"सुंदर ते ध्यान उभे विटेवरी,
कर कटावरी ठेवूनिया..."*

उस दिन केवल सुना नहीं, बल्कि अनुभव किया। विठ्ठल के सम्मुख खड़े होकर मन पूर्णतः शांत हो गया। ऐसा लगा मानो जीवन की सारी व्यस्तता, चिंता और अहंकार उसी क्षण पीछे छूट गए हों।

भगवान पांडुरंग की रथप्रदक्षिणा के समय पूरा पंढरपुर हरिनाम में डूबा हुआ था। हजारों जुड़े हुए हाथ, लाखों कंठों का एक स्वर और भक्ति का अथाह सागर—यह दृश्य जीवन भर स्मरण रहेगा। उसी क्षण मन में सहज ही भाव उमड़ा—**"देह पंढरी झाला... आणि मन विठ्ठलमय!"**

बचपन से सुना हुआ गीत—*"चंद्रभागेच्या तीरी, उभा मंदिरी, तो पहा विटेवरी... दुमदुमली पंढरी, पांडुरंग हरी..."*—उस दिन मेरे लिए केवल गीत नहीं रहा; वह सजीव अनुभव बन गया। सचमुच, "दुमदुमली पंढरी" लाखों वारकरियों की श्रद्धा, टाळ-मृदंग की लय, धूल से सने चरणों और विठ्ठल-दर्शन की प्रतीक्षा करती आँखों में प्रत्यक्ष दिखाई दे रही थी।

2026 की वारी का एक उल्लेखनीय पक्ष उसका सुव्यवस्थित प्रबंधन भी रहा। प्रशासन, पुलिस, स्वास्थ्य विभाग, स्वच्छता कर्मियों और स्वयंसेवकों ने लाखों श्रद्धालुओं की सुविधा, सुरक्षा और सेवा के लिए उल्लेखनीय योगदान दिया। इससे यह संदेश मिलता है कि श्रद्धा के साथ आधुनिक व्यवस्थापन और सामूहिक सहभागिता जुड़ जाए, तो इतना विशाल आयोजन भी सुचारु रूप से संपन्न हो सकता है।

पंढरपुर से लौटते समय शरीर तो वापस आ गया, लेकिन मन वहीं विठ्ठल की नगरी में रह गया। इस वारी ने मुझे सिखाया कि जीवन का वास्तविक आनंद संग्रह में नहीं, समर्पण में है; श्रेष्ठता में नहीं, समानता में है; और ईश्वर को केवल मंदिर में नहीं, बल्कि सेवा, प्रेम और मानवता में खोजने में है।

आज मेरे लिए "दुमदुमली पंढरी" केवल एक गीत की पंक्ति नहीं, बल्कि जीवन भर साथ रहने वाली आध्यात्मिक अनुभूति है। आषाढी वारी ने मेरे भीतर यह विश्वास और भी गहरा किया कि जब लाखों हृदय एक ही नाम—विठ्ठल—में जुड़ जाते हैं, तब भक्ति केवल व्यक्तिगत अनुभव नहीं रहती, बल्कि वह मानवता को जोड़ने वाली एक विराट शक्ति बन जाती है।



“जय जय राम कृष्ण हरी!”

“ज्ञानोबा माऊली... तुकाराम!”

श्री. महावीर सु.रांगोळे
तकनिकी अधिकारी
प्रायोगिक पशु सुविधा

हिंदी पखवाड़े (2025) के पुरस्कृत निबंध

क्या 70 घंटे का कार्य सप्ताह स्वस्थ है?

आज जब विश्व में विभिन्न देशों की प्रगति उत्पादन और सृजन पर मूलतः निर्भर हो गई है, वहीं कार्य सप्ताह की अवधि पर अनोकों बहस होती रही हैं। कुछ उद्योगियों और विचारकों का मानना है कि, 70 घंटे के कार्य सप्ताह से हम ज्यादा प्रगतिशील हो सकते हैं, और जल्दी प्रगति कर सकते हैं। पर मूलतः सवाल यह उठता है कि क्या 70 घंटे की कार्य अवधि प्रत्येक सप्ताह जरूरी है या क्या ये नैतिक और मानवीय दृष्टिकोण से सही भी है, और सबसे महत्वपूर्ण, क्या यह शारीरिक और मानसिक दृष्टिकोण से स्वस्थ है?

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव-

70 घंटे के कार्य सप्ताह का अर्थ है , 11-12 घंटे लगभग प्रतिदिन काम। चिकित्सीय दृष्टिकोण से मनुष्य को आराम, मनोरंजन, नींद तथा व्यायाम की जरूरत होती है। ऐसे में प्रतिदिन 11-12 घंटे काम करने से मनुष्य अपनी जरूरी चीजों से वंचित रह सकता है। लंबी कार्य अवधि से- थकान, नींद की कमी, हृदयरोग की संभावना अथवा दीर्घकालिक रोगों की संभावना बढ़ जाती है।

लंबी कार्य अवधि सिर्फ शारीरिक रूप से नहीं, मानसिक रूप से भी मनुष्य के घातक साबित हो सकता है। 70 घंटे कार्य सप्ताह की वजह से अत्यधिक चिंता, चिड़चिड़ापन और मानसिक तनाव रह सकता है, जो मनुष्य को मानसिक रूप से भी बीमार कर सकता है।

काम जरूरी है, आराम भी जरूरी है उतना ही

तन को मिले आराम, मन को मिले शांति

काम के तनाव में कैसे विकास होगा,

अगर पड़े बीमार, तो फिर किसका प्रयास होगा।।

पारिवारिक और सामाजिक संतुलन-

70 घंटे कार्य सप्ताह के बाद, मनुष्य न अपने परिवार को समय दे सकता है, और न ही अपने समाज को। मनुष्य मशीन नहीं है, वह रिश्तों, परिवार और समाज से घिरा हुआ एक जीवित प्राणि है। 11-12 घंटे प्रतिदिन काम करनेवाला मनुष्य अपने बच्चों से बातचीत तक नहीं कर सकता, परिणामस्वरूप- बच्चों से दूरियाँ बढ़ने लगीत है, दांपत्य जीवन में कोलाहल मच जाती है, और बुजुर्गों की देखभाल पीछे छूट जाती है।

परिवार से दूरियाँ बढ़ाई, काम ने दिन रात,

अपने-अपनों का छूट गया साथ।

दौड़ते-दौड़ते हम, कहाँ जा रहे भाई,

परिवार और रिश्तों के बिना, किसा काम की कमाई।।

भारत जैसे देश को 70 घंटे कार्य सप्ताह क्यों जरूरी नहीं है-

भारत विश्व की सबसे बड़ी जनसंख्यावाला देश है। यहाँ युवाओं की भरपूर आबादी है। अगर हम अपने युवाओं को कुशल बनाते हैं, तब न केवल हम उन्हें रोजगार दे पाएंगे बल्कि प्रति व्यक्ति कार्यभार भी कम कर सकेंगे। मूलतः भारत जैसे विशाल जनसंख्यावाले देश के लिए 70 घंटे कार्य सप्ताह जरूरी नहीं है, क्योंकि- युवाओं को कुशल बनाने से, रोजगार बढ़ेगा और बेरोजगारी घटेगी। ज्यादा रोजगार से प्रति व्यक्ति कार्यभार भी घटेगा। एक व्यक्ति से 70 घंटे काम कराने से अच्छा बहुत से लोगों से 35-40 घंटे काम करानेवाला मॉडल देश के लिए संतुलित और टिकाऊ है।

हार्थों में है दम, और आँखों में उजाला,

कुछ लोग काम क्यों बढ़ाए, जब सबका हो सहारा।

अब युवा बनेंगे रोजगारवान,

तब बनेगा भारत, समृद्ध और महान॥

आर्थिक दृष्टिकोण-

कुछ लोगों का मानना है कि 70 घंटे कार्य सप्ताह से जल्दी तरक्की और उन्नति की जा सकती है, लेकिन यह सोच केवल अल्पकालिक रूप से ही सही है। लगातार लंबे कार्य अवधि में काम करने से, कर्मचारी मानसिक और शारीरिक तनाव के कारण बीमार पड़ सकते हैं, जिससे उनकी कार्यक्षमता बाधित हो सकती है। इसलिए 70 घंटे के कार्य सप्ताह से जल्दी तरक्की सिर्फ अल्पकालिक उपाय हो सकता है।

अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण-

यूरोप के कुछ देशों ने 35-40 घंटे का कार्यसप्ताह लागू करने की ओर कदम बढ़ाया है। कुछ निजी कंपनियों ने 4 दिन कार्य सप्ताह को अपने कर्मचारियों पर लागू भी कर दिया है। इस दोनों प्रारूपों में राजस्व की कोई हानि नहीं देखने को मिली। उपर से कर्मचारियों में आत्मविश्वास बढ़ा और उनकी कार्यक्षमता में भी वृद्धि हुई। अतः लंबा कार्य सप्ताह एकमात्र उपाय नहीं हो सकता विकसित होने का।

नैतिक और मानवीय दृष्टिकोण-

मनुष्य एक जीवित प्राणि है, मशीन नहीं। वह नैतिक आधारों पर घिरा हुआ प्राणि है। मनुष्य अगर अपने जीवनकाल में सिर्फ काम ही करेगा, बिना कोई रिश्ता निभाए, बिना किसी पारिवारिक जुड़ाव के तो उसका जीवन अधूरा रह जाएगा। अर्थात् मनुष्य

को अपने जीवन में कार्य और अपने निजी कार्यक्रम जैसे कि, परिवार, समाज, मनोरंजन, आराम, व्यायाम में संतुलन बनाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष-

70 घंटे का कार्य सप्ताह न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक रूप से भी घातक है। 70 घंटे प्रत्येक सप्ताह काम करने से मनुष्य अपने पारिवारिक जीवन को खो सकता है। भारत जैसे विशाल जनसंख्यावाले देश में एक व्यक्ति से 70 घंटे काम कराने के बजाए बहुत लोगों से 35-40 घंटे काम करानेवाला मॉडल ज्यादा उपयुक्त, संतुलित और टिकाऊ है। मनुष्य को मशीन न समझकर उसे रिश्तों और पारिवारिक चेष्टा भी समझने की जरूरत है। अंततः 70 घंटे का कार्य सप्ताह न केवल अस्वस्थ है, बल्कि विनाशकारी भी है।

श्री. अनुराग कश्यप, अनुसंधान अध्येता
हिंदी भाषी- प्रथम पुरस्कार विजेता

डिजिटल लेनदेन

तकनीक की नई उड़ान-डिजिटल लेन-देन बना पहचान

नकद का झंझट, सिक्कों का बोझ,

सिमट जाएगी सब एक रोज़।

तकनीकी युग की यही पहचान,

डिजिटल भुगतान बनाए जिंदगी आसान।

इक्कीसवीं सदी को तकनीकी सदी का आगाज़ कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। तकनीक का विकास आज हर क्षेत्र चाहे वह शिक्षा, व्यवसाय, संचार हो या स्वास्थ्य एवं परिवहन, हर जगह उपयोगी है। तकनीक की इस क्रांति का एक हिस्सा है- डिजिटल लेन-देन।

सामान्य शब्दों में समझाया जाए तो डिजिटल लेन-देन का मतलब है-बिना नकद पैसे एवं रूपए का आदान-प्रदान। यह एकीकृत भुगतान अंतरफलक (यूपीआई), क्रेडिट कार्ड या डेबिट कार्ड से किया जाता है, जो व्यक्ति के बैंक से जुड़ा होता है।

भारत जैसे विविधापूर्ण देश में डिजिटल लेन-देन का महत्व ज्यादा तब उजागर होता है जब हम शिक्षा या व्यवसाय के लिए दूसरे शहर में जाते हैं। वहाँ बस एक बटन से कहीं भी भुगतान कर पाते हैं। यही नहीं, बल्कि विदेश में उनके एप्स के द्वारा ऑनलाइन मुद्राओं का परिवर्तन आसानी से हो जाता है।

डिजिटल परिपक्वता को ध्यान में रखते हुए हमारे माननीय प्रधानमंत्री श्री. नरेंद्र मोदी जी द्वारा 1 जुलाई 2015 को डिजिटल इंडिया का प्रमोचन किया गया जो भारत को डिजिटल नजरिए से एक सशक्त समाज और आर्थिक व्यवस्था को आगे बढ़ाने में सक्षम हुआ।

2016 में हुए नोटबंदी के बाद भारतीय लोगों ने ऑनलाइन भुगतान को अपना लिया। आइए जानते हैं कैसे डिजिटल लेन-देन ने हमारी मदद की है-

- आज हर एक छोटे-बड़े शहर एवं कस्बे की दुकानों में क्यूआर कोड लटका हुआ मिल जाता है। इससे छुट्टे इकट्ठा करने की झंझट या एक बार नकद देने की समस्या को सुलझा दिया है।

- आज आप घर बैठकर किसी भी कोने में पैसे भेज सकते हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में जहाँ समय पर भुगतान न कर पाने पर जिंदगी खत्म होनेवाली समस्या को भी दूर किया।

•नकद निकालने की लंबी-लंबी कतारें, नकली नोट की परेशानी और ढेर सारा नकद व सिक्कों को लेकर बाहर जाने की समस्या भी डिजिटल लेन-देन से निपटाई गई है। लेकिन हमारे पूर्वजों ने कहा है कि- कोई भी तकनीक बिना नुकसान के नहीं आती।

डिजिटल लेन-देन के कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं। जिस तरह अपराधी हर जगह अपने पैर पसार रहे हैं, डिजिटल दुनिया जिसका इस्तेमाल बिना इंटरनेट के नहीं हो सकता, वहाँ भी साइबर अपराधी ने अपना फैलाव कर लिया है।

आपकी गोपनीय सूचना मिलते ही साइबर अपराधी आपको कई तरह की चीजों का झांसा देकर, धोखाधड़ी से आपकी बैंक शाखा से पैस निकलवा लेते हैं। यूँ कहा जा सकता है कि नकद की जो लूट राह चलते की जाती थी वह लूट अब ऑनलाइन हो गई है।

अखबार में आए दिन इसकी खबर छप रही होती है लेकिन क्या इसका यह मतलब है कि हम इसका इस्तेमाल बंद कर दें। तकनीक के वरदान डिजिटल लेन-देन को बंद कर दें। इसका सरल उत्तर है -नहीं। हालांकि इससे निपटने के लिए हमें बहुत ही सतर्क एवं सावधान रहना होगा। भारत सरकार द्वारा साइबर अधिनियम का ध्यान रखते हुए किसी भी अनजान लिंक पर न दबाना व अनजान लोगों को अपने बैंक के बारे में न बताना कुछ मुख्य नियम है जिससे डिजिटल लेन-देन में होनेवाले अधिकतर अपराधों से बचा जा सकता है।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि डिजिटल लेनदेन से हमारी जिंदगी आसान हुई है और यह हमारे उपर निर्भर करता है कि हम ऐसे हर नई तकनीक का इस्तेमाल कितनी सहजता एवं सतर्कता के साथ कर रहे हैं।

डिजिटल लेन-देन उन्हीं तकनीकी विकासों में से एक है जहाँ सरकार द्वारा समय-समय पर जागरूकता अभियान व आम जनता द्वारा दृढ़ निश्चय कर एवं लालच में न पड़कर, बुद्धि के साथ उपयोग करना आवश्यक है, तभी हमारा भारत एक विकसित भारत के रूप में विश्व के समाने प्रकट हो पाएगा।

डिजिटल लेन-देन बढ़ाए विकास की ओर
जिसकी एक डोर है आपकी ओर।
न करें सांझा ओ टी पी व बैंक की जानकारी
पड़ जाएगा आर्थिक संकट भार

सुश्री. दिव्या रानी, अनुसंधान अध्ययता
हिंदी भाषी- द्वितीय पुरस्कार विजेता

क्या 70 घंटे का कार्य सप्ताह स्वस्थ है?

रूपरेखा-

1. प्रस्तावना
2. मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य में कमी
3. कार्यक्षमता और उत्पादकता में कमी
4. पारिवारिक और सामाजिक जीवन पर प्रभाव
5. कलात्मकता एवम सूचनात्मकता पर प्रभाव
6. मादक पदार्थों का सेवन
7. उपाय
8. उपसंहार

1.प्रस्तावना- कार्य जो कि मानव जीवन का अभिन्न अंग है। हमारे शास्त्रों में कर्म ही पूजा है ऐसा कहा गया है और यह सत्य भी है। मन को साधकर सुनियोजित रूप से सही दिशा में जो कार्य किया जाए तो सफलता मिलती है और यह व्यक्तिगत मामल है कि हमें संतुष्ट सफलता से मिलती है या अपना काम अच्छे से करने में जो संतुष्ट की अनुभूति है वो सफलता से अधिक महत्वपूर्ण है। कुछ कार्य आत्मिक संतुष्टि के लिए होते हैं और कुछ आर्थिक तृप्ति के लिए। वो लोग भाग्यशाली होते हैं जिनके आर्थिक कार्यों में आत्मिक संतुष्टि निहित होती है। 70 घंटे का साप्ताहिक कार्य निश्चित रूप से स्वास्थ्यकर नहीं है।

2.मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य में कमी- 70 घंटे का कार्य व्यक्ति के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को बुरे तरीके से प्रभावित करता है और इसके दीर्घकालिक परिणाम संपूर्ण स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रतिकूल है। विश्व पटल पर प्रकाशित कई शोधपत्रों और समीक्षाओं में इस तथ्य की पुष्टि की गई है कि एक सप्ताह में अत्यधिक कार्य व्यक्ति के साथ-साथ उसकी कार्यक्षमता को भी प्रभावित करता है। स्वस्थ शरीर में ही मन का वास होता है और मन लगाकर किए गए कार्य से सफलता की प्राप्ति भी होती है।

3.कार्यक्षमता और उत्पादकता में कमी- नियमित अत्यधिक कार्य, आहार और पर्याप्त पोषक तत्वों की कमी, घंटों एक ही जगह बैठकर एक ही काम करना, निश्चित ही उत्पादकता को कम करता है। कार्यक्षमता और उत्पादकता में सीधा संबंध है। एक पत्रिका के अनुसार लंबी कार्यावधि का उच्च उत्पादकता से कोई संबंध नहीं है और यदि है भी तो निश्चित रूप से व्यक्ति अथवा वस्तु की गुणवत्ता प्रभावित होगी। एक अनुमान के अनुसार फ्रांस में प्रति व्यक्ति प्रति सप्ताह कार्य 30 घंटे है और

वहाँ की उत्पादकता 50\$ है जबकि भारत में यह 48 घंटे है और उत्पादकता 8.5 \$ है।

4.पारिवारिक और सामाजिक गतिविधियों की कमी- अगर जीवन में व्यक्ति का उद्देश्य अधिक आर्थिक रूप से समृद्ध होने के अलावा उस समृद्धता को अपने परिवार के साथ बाँटना भी है। क्या हो अगर हम सिर्फ काम ही किए जा रहे हैं और हमारे पास परिवार के लिए समय नहीं, उस धन का क्या लाभ जो हमें भावनात्मक और व्यावहारिक रूप से निर्धन बना दे। यह 70 घंटे की कार्य अवधि महिलाओं के लिए और एक नई चुनौती है- एक तरफ उन्हें आसमान देकर उड़ने का अवसर देना है फिर दूसरी तरह ऐसे नियम बनाकर उन्हें कार्य और परिवार के मध्य असंतुलन और अनिश्चितता की स्थिति पैदा कराता है। ऐसे में उन महिलाओं की स्थिति और विचारशील बनती है जो एकल मातृत्व का जीवन व्यतीत कर रही है।

5.कलात्मकता और रचनात्मकता की कमी- मानव मस्तिष्क की यह प्रवृत्ति है कि एक ही कार्य को लगातार बिना किसी नवीनता के उब जाता है। ऐसे में 70 घंटे की कार्य अवधि किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। यदि ऐसा है भी तो मानव और मशीन में कोई भेद नहीं होगा। मशीन भी एक अवधि के बाद अपनी क्षमता से अधिक उपयोग करने पर खराब हो जाती है, फिर मानव मन और शरीर के लिए प्रेम, कला, भाव, कविता उतने ही जरूरी है जितना की अर्थ अर्थात धन। निश्चित रूप से आर्थिक सुरक्षा महत्वपूर्ण है पर अपने दिन के 10 घंटे अगर सिर्फ काम ही करेंगे वो भी आर्थिक मजबूती के लिए, तो अन्य चीजों के लिए समय ही नहीं मिलेगा।

6.मादक पदार्थों का सेवन- अत्यधिक कार्य के भार से दबा व्यक्ति का तनाव में जाना स्वाभाविक है। उस तनाव को भूलने के लिए फिर व्यक्ति अस्वास्थ्यकर पदार्थों का सेवन करता है जो उसके शरीर, दिमाग और रुपये दोनों को गंभीरता से क्षति पहुँचाते हैं। तनाव की स्थिति और मनःस्थिति दूषित और असंतुलित होने से घरेलू हिंसा को बढ़ावा मिलता है जो बच्चों के बाल मन को बुरी तरह से प्रभावित करता है।

7.उपाय- भारतीय जनसंख्या में से अधिकांश युवा है जो देश को प्रगति के पथ पर अग्रसर करना चाहते हैं। उनका सही दिशा में उपयोग न कि शोषण और उनकी उर्जा को दोहन कर, भारत को वैश्विक स्तर पर उन्नति और उत्पादकता की दृष्टि से आगे ले जाया जा सकता । उसके लिए तकनीकी नवाचार और युवा संसाधनों

का उचित प्रयोग करने की आवश्यकता है। आज का युवा जो त्वरित निर्ण लेकर छोड़ भी सकता है वही अगर मन हो तो प्रसन्नतापूर्वक सारे कार्य कर लेता है, बिना किसी शिकायत के। हमें जरूरत है कार्यक्षम पर रचनात्मकता की, नवीनता की, आर्थिक सुरक्षा के साथ-साथ मानसिक सबलता की तभी देश की युवा आबादी भारत को प्रगति के पथ पर अनवरत आगे ले जा सकती है।

8.उपसंहार- वह तरक्की और उँचाई किसी काम की नहीं जहाँ पहुँचकर परिवार दूर हो जाए और शारीरिक स्वास्थ्य गिर जाए, क्योंकि कहा गया है शरीर माध्यं खलु धर्म साधनम्। जीव को सुचारु रूप से चलाने के लिए अच्छा स्वास्थ्य जरूरी है। यह सच है कि दुनिया प्रगति और उत्पादकता से चलती है पर जीवित और संतुलित प्रेम और कला की ही देन से है।

70 घंटे का कार्य यह व्यक्ति की निजी आकांक्षा पर निर्भर है इसे सभी पर लागू करना नियमों का दोहन है क्योंकि सभी को “अत्याधिक धन की चाह नहीं होती, कुछ लोग साँई इतना दीजिए जामे कुटुंब समाए, मैं भी भूखा न रहूँ साधु भी भूखा न जाए” पर विश्वास करते हैं। और यही जीवन का वास्तविक सत्य है।

सुश्री. वंदना मौर्य, अनुसंधान अध्येता
हिंदी भाषी- तृतीय पुरस्कार विजेता

क्या 70 घंटे का कार्य सप्ताह स्वस्थ है?

आज के व्यावसायिक और सामाजिक परिवेश में एक नई स्पर्धा धीरे-धीरे आकार ले रही है। ज्यादा से ज्यादा घंटे काम करना और मेहनत को ही आजकल सब सफलता की सीढ़ी मानते हैं। कुछ व्यवसायी और उद्योगपति के अनुसार एक हफ्ते में 70 घंटे काम करवाना इस बात को बढ़ावा दिया जा रहा है। इस निबंध में हम इस बारे में चर्चा करनेवाले हैं कि क्या 70 घंटे का कार्य सप्ताह स्वस्थ है या नहीं।

आम तौर पर कार्य सप्ताह 40 से 48 घंटे का होता है जो श्रमकानूनों और विशेषज्ञों द्वारा अनुशासित किया गया है। 40 से 48 घंटे के कार्य सप्ताह में कर्मचारी 8 या 9 घंटे रोज काम करते हैं, जो सार्वजनिक क्षेत्र में काम करते हैं वो 8 या 9 घंटे तक काम करते हैं, तो निजी क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारी दिन के 10 से 12 घंटे काम करते हैं। अगर 70 घंटे काम करने की नौबत आई तो सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों को न के 14 घंटे काम करना पड़ेगा। इससे कर्मचारियों पर क्या प्रभाव होगा ये देखते हैं।

व्यक्ति अगर सप्ताह के 70 घंटे कार्य करे तो सबसे पहले उसे शारीरिक व्याधि का सामना करना पड़ता है। कई घंटे लगातार एक जगह पर बैठकर काम करने से उसका शरीर भारी हो जाता है। आलस्य बढ़ जाता है। काम करने के चक्कर में व्यक्ति खुद की प्रकृति का खयाल रखने में अकुशल हो जाता है। कसरत या कोई शारीरिक व्यायाम करने के लिए वह अपनी असमर्थता दर्शाता है। इसी वजह से वह अपनी अच्छी सेहत को खो देता है।

70 घंटे कार्य करना व्यक्ति का शारीरिक नुकसान के साथ मानसिक नुकसान भी होता है। आज के इस स्पर्धात्मक युग में हर कोई सफलता और जिंदगी में ऊँचा मुकाम बासिल करने के लिए जी तोड़ मेहनत कर रहा है। निजी क्षेत्र में कार्यरत अधिकतर कर्मचारियों को तनाव का सामना करना पड़ता है। जब तक उद्देश्यपूर्ति नहीं होती तब तक काम करने से व्यक्ति को शारीरिक थकावट तो होती ही है पर सबसे ज्यादा मानसिक थकावट होती है। कार्य का तनाव व्यक्ति की उत्पादकता को घटा देती है। इस वजह से व्यक्ति चिढ़चिढ़ापन, असंतोष व्यक्त करता है। वह निराश हो जाता है और वह खुद को सामाजिक अलगाव की ओर ले जाता है।

70 घंटे कार्य करने से व्यक्ति की निजी जिंदगी में समस्याएँ खड़ी होती हैं। ज्यादा देर तक काम करने से व्यक्ति अपने परिवार के साथ ज्यादा से ज्यादा वक्त नहीं बिता पाता। अपने मित्र-परिवार, रिश्तेदार यहाँ तक कि वैवाहिक जीवन में भी वह

अपना वक्त न देने के कारण उपहास और नाराजगी का विषय बन जाता है। इन बातों से और समस्याओं से व्यक्ति को और कष्ट उठाना पड़ता है।

कुछ तर्कवितर्क ऐसे लगाए जा रहे हैं कि कुछ खासगी क्षेत्र जैसे कि स्टार्टअप कंपनी, मैन्युफैक्चरिंग प्लांट आदि में 70 घंटे कार्य करना उचित है, पर इससे अगर कर्मचारी को नुकसान झेलना पड़े तो ये उचित पर्याय कभी नहीं हो सकता। अगर 70 घंटे काम करवाना अनिवार्य है (उदाहरण के तौर पर अस्पताल) तो अतिरिक्त कर्मचारी वर्ग भर्ती करके 70 घंटे काम करवाकर टारगेट या ध्येयपूर्ति की जा सकती है और वह भी सिर्फ अस्थायी तौर पर ही किया जा सकता है।

स्वास्थ्य को पहले प्राधान्य ना यही हर कर्मचारी का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए। 70 घंटे का कार्यसप्ताह सुनने में, बहस में या फिर वादविवाद के विषयों में महत्वपूर्ण लगे, पर एक कर्मचारी के लिए व नुकसानजनक है। कर्मचारी भी एक मनुष्य है जिसे विश्रान्ति की आवश्यकता है, उसे अपनी उत्पादकता बढ़ाने के लिए व्यायाम, कसरत और उचित खान-पान की अत्यंत आवश्यकता है। मगर काम के बोझ तले दबकर व्यक्ति खुद का अधिकाधिक नुकसान कर लेता है। इसलिए 70 घंटे का कार्यसप्ताह व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य के साथ साथ मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी अयोग्य है और इसका समर्थन करना भी गलत है।

श्री. विक्रान्त गायकवाड
अहिंदी भाषी- प्रथम पुरस्कार विजेता

मेरे सपनों का भारत

राष्ट्र केवल वह जगह नहीं है जो वास्तव के लिए हो, वह एक चेतना भी है। जब मैं यह सोचता हूँ कि क्या राष्ट्रीय चेतना समस्त विश्व के लिए प्रेरणा बन सकती है? तो इसका उत्तर है, बिल्कुल। यह चेतना केवल भारत में है। भारत न केवल बौद्धिक बल्कि कई क्षेत्रों में अग्रेसर रहा है। भारत ने कला, विज्ञान, राजनीति, वास्तु इन सभी क्षेत्रों में भी कई आयाम विकसित किए हैं। भारत संगीत, व्यवस्थापन आदि क्षेत्रों में भी कई आयाम प्रस्थापित कर चुका है।

इतिहास हमेशा राष्ट्र के साथ साथ चलता है। परंतु क्या केवल इतिहास का समृद्ध होना पर्याप्त है या क्या केवल कुछ आयाम विकसित कर लेना पर्याप्त है ? क्या इसे दुनिया में अधोरेखित करना आवश्यक नहीं? यहीं से आरंभ होता है वह सपना जो अपने भारत के लिए मैं देखता हूँ। गुरुशिष्य परंपरा जहाँ की पंचान हो रही है, जो तीसरी शताब्दी का सुवर्णकाल रहा हो, वह भारत, जो उत्तर से दक्षिण तक सारी विविधताओं को भीतर समेटे खड़ा हो। जो दुनिया को प्रेम की भाषा सिखाता हो, वह भारत संपूर्ण विश्व का नेतृत्व करता हुआ भविष्य निर्माण करे, यह सपना हम अपने राष्ट्र के लिए देखते हैं।

भारत में समृद्धि, विकास के नए आयाम हो। सहिष्णुता जो हमारी पहचान रहा है, वह पूँजी भारत सबको सिखाए यह सपना हम भारत के लिए देखते हैं। शिक्षा के लिए संपूर्ण विश्व भारत की ओर देखे यह हमारा सपना है। उपनिषद्, गीता यहां की परंपरा रही है, ज्ञान और समझ जिसके जीवन यापन का मूल उद्देश्य रहा है वह भारत हम देखना चाहते हैं। भारत की स्थापना नैतिकता और उन मूल्यों के आधारभूत हो जिसे विश्व न केवल स्वीकार करें बल्कि अपने जीवन का अंश बनाए। भारत ने भक्ति का जो मार्ग और संतत्व के साथ जीने की कला सिखाई है वह अद्भुत है। स्वर्गीय अटलबिहारी वाजपेयी जी ने यह कहा था कि मेरी मृत्यु के उपरान्त गंगा में बहती मेरी अस्थियों को भी जो कान लगाकर सुनोगे तो एक ही आवाज आएगी “भारत माता की जय हो।” राष्ट्र के प्रति सच्ची निष्ठा और भक्ति का यह प्रतीक है। आनेवाली पीढ़ियाँ इस निष्ठा को सीखें और आत्मसात करें। मेरे सपनों के भारत की जब भी मैं कल्पना करता हूँ तो पाता हूँ कि उसमें जागरूकता हो। तंत्रज्ञान के साथ-साथ स्वधर्म साथ चले। स्वच्छता और आरोग्य के प्रति अपना दायित्व निभाया जाए। सामाजिक एकता का प्रतीक रहा भारत कल के समय में वैश्विक एकता का प्रतीक बने।

राष्ट्रीय संपत्ति और राष्ट्रीयता का सम्मान वह चीजें हैं जो मुझे क्रांतिकारियों की छवियां याद दिलाती हैं। रूढ़ियां परंपरा से आगे विज्ञान और उपनिषद् हो, न केवल सहयोग बल्कि साहस भी जहां की पहचान हो वह भारत हो। गुरुदेव की लेखनकला और भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव का साहस और आनेवाले समय में भारत राष्ट्रपिता की अहिंसक आवाज का भी सम्मान करे।

भारत वह देश है जिसको प्राकृतिक सौंदर्य की उपलब्धता कुछ विशेष है, उत्तर में घाटी से लेकर दक्षिण तट के अरब सागर तक। हमारी नदियाँ जीवन स्रोत हैं इसकी सुंदरता भी भारत में बनी रहे और हम जीवन अधिक कुछलता के साथ इसको सुंदर बना सके, यह हम भारत के लिए एक सपना बुनते रहते हैं। भारत के सभी शहर एक दूसरे से जुड़े हो वहां की यातायात सुलभ हो, जनसंख्या को लेकर हम जागरूक रहें, इसका सपना हम बुनते रहते हैं।

इस धरती के बारे में, इस देश के विषय के संदर्भ में यह कहा जाता है यह वंदन की धरती है, अभिनंदन की धरती है, यहाँ का कंकड कंकड हमारे लिए शंकर है। इस भावना को सभी देशवासी अपने हृदय में बसाएं। यह हम भारत के लिए कल का प्रतीक गढ़ना चाहते हैं। निरंतर बदलते समय में भी जहां पर कर्तव्यनिष्ठा बनी रहे, जहाँ प्रतिस्पर्धा हो परंतु शत्रुता नहीं और भारत का युवा समृद्धि के सारे शिखर छुए।

पारिवारिक मूल्य और उन दायित्वों को भारत मजबूती से लेकर आगे बढे। आजादी के बाद डॉ. रामधारी दिनकर जी ने संसद में जो कहा था उससे मैं सहमत हूँ, कि- एक हाथ में कमल, एक हाथ में धर्मदीप्त विज्ञान ले करके उठनेवाला है जग में हिंदुस्तान।

आज मैं यह साझा करना चाहता हूँ कि अगर कोई पूछे कल तो बस भारत यह कहे-

मैं भारत हूँ, मैं राष्ट्र हूँ।
मैं पुरातन, मैं आधुनिक जीवन का एक प्रतिकशास्त्र हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं राष्ट्र हूँ।
मैं विंध्य की ऐतिहासिक धरोहर,
मैं समृद्धि का एक जीवनमार्ग हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं राष्ट्र हूँ।
मैं मर्यादापुरुष की करुणा,
मोहन की गीता, सिद्धार्थ का चैतन्य।

कभी ना समाप्त होनेवाली ज्ञानगंगा हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं राष्ट्र हूँ।
मैं भास्कराचार्य का खगोलविज्ञान,
मैं ब्रम्हगुप्त का शून्य।
मैं आधुनिकता का एकमात्र बीज हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं राष्ट्र हूँ।
मैं हिमालय की उँचाई।
हिंद महासागर की विशालता।
और विंध्य की ऐतिहासिक धरोहर हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं राष्ट्र हूँ।

कुछ इस तरह मेरे सपनों का भारत हो। भारत विश्वगुरु, भारतीयता और समृद्धि का प्रतीक बनें। भारत की सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना विश्वस्तर की चेतना बने। मोहन की गीता जहां जनमानस का ध्यान बनें।

शोषण, गरिबी, उत्पीड़न से आगे निकलकर भारत एकता, बंधुता और ताकत का प्रमाण बने।

सभ्यता और संस्कृति की धरोहर और साथ-साथ सत्यनिष्ठा भारत हमेशा लेकर चले। विशिष्टता और विश्वबंधुता को भारत हमेशा प्रस्थापित करता हुआ आगे बढ़े। यही मेरे सपनों का भारत होगा। सुजलाम सुफलाम यह भारत एक विकसित और राष्ट्रीय चेतना और सत्यनिष्ठा के साथ-साथ विश्वगुरु हो। यही मेरे सपनों का भारत होगा।

श्री. परेश पाटील
अहिंदी भाषी- द्वितीय पुरस्कार विजेता

डिजिटल लेनदेन

आज का युग विज्ञान और तकनीक का युग है। हर रोज नई-नई खोज और अविष्कारों ने हमारे जीवन को आसान और सरल बना दिया है। जहाँ तकनीक ने हमारे जीवन के हर क्षेत्र में जैसे स्वास्थ्य, परिवहन, संचार को आगे बढ़ने में मदद की है, वैसे ही आर्थिक लेन-देन को भी प्रभावित किया है। जब भी कोई लेन-देन बिना नकद पैसों के जैसे कि मोबाइल या इलेक्ट्रॉनिक साधनों या माध्यमों द्वारा किया जाता है, उसे डिजिटल लेनदेन कहते हैं। डिजिटल लेनदेन को कैशलेस अर्थव्यवस्था के नाम से भी जाना जाता है।

भारत में डिजिटल लेनदेन को बढ़ावा वर्ष 2016 की नोटबंदी के बाद दिया गया। क्योंकि इस दौरान नकद पैसों की कमी और परेशानी लोगों की रोजमर्राह की जिंदगी पर पड़ रहा था। उससमय सरकार ने डिजिटल लेनदेनकी सेवा को बढ़ावा दिया और उसके बाद से लोगों ने इस इस्तमाल करना शुरू किया और आज यह हमारी रोजमर्राह की जिंदगी का हिस्सा बन चुका है।

डिजिटल लेनदेन के कई माध्यम हैं। इसमें सबसे पहला है- डेबिट कार्ड या क्रेडिट कार्ड। नके द्वारा किसी भी दुकान में मशीनों के द्वारा भुगतान किया जा सकता है। इतना ही नहीं बल्कि एटीएम से पैसे भी निकाले जा सकते हैं। दूसरा माध्यम है इंटरनेट बैंकिंग- जिसमें कंप्यूटर या मोबाइल ऐप के जरिए कहीं से भी बैंक खाते से भुगतान या ट्रांसफर किया जा सकता है। इतना ही मोबाइल में बैंकिंग ऐप इस्तेमाल करके कहीं से भी - जैसे कि घर बैठे ही डिजिटल लेनदेन किया जा सकता है।

सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है युपीआई (युनिफाइड पेमेंट इंटरफेस) जिसमें कहीं भी मोबाइल से या क्यू आर कोड को स्कैन करके कहीं भी भुगतान किया जा सकता है। इसमें पेटीएम, फोन पे, गुगल पे जैसे ऐप या वॉलेट का उपयोग करके बिजली और पानी का बिल, खरीदारी करने या मोबाइल रिचार्ज करने में प्रयोग किया जाता है। आजकल तो सरकार ने सबसिडी भी सीधे लोगों के बैंक खाते में भेजना शुरू कर दिया है। इस डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर कहा जाता है। यह भी एक महत्वपूर्ण माध्यम है डिजिटल लेनदेन का।

डिजिटल लेनदेन के बहुत से फायदे हैं। इसने हमारे जीवन को सरल बना दिया है। अब किसी भी आर्थिक लेनदेन के लिए हमें नकद पैसों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। हम कोई भी लेनदेन घर बैठकर कर सकते हैं। इसके चलते हमें न ही

बहुत सारी धनराशि साथ रखनी पड़ती है, और न ही चोरी या गुम होने का डर रहता है। भारत सरकार भी कैशलेस अर्थव्यवस्था और डिजिटल लेनदेन को प्रेरित करती है। जनता को बेनिफिट देकर, बहुत ही सरल और सक्षम होने की वजह से लोगों ने इसे अब अपने रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा मान लिया है। इसका एक और फायदा है- छुट्टे पैसों की कमी के कारण छोटे-छोटे दुकानदार भी अब क्यू आर का इस्तेमाल करके भुगतान करते हैं। जिससे छुट्टे पैसों का झंझट खत्म हो गया है।

फायदे होने के साथ डिजिटल लेनदेन की अपनी चुनौतियाँ भी हैं। जहाँ इसने हमारी रोजमर्रा की जिंदगी को सरल किया है, वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली या इंटरनेट की सुविधा न होने के कारण वो इसका लाभ नहीं उठा सकते। और सबसे बड़ी चुनौती है- साइबर क्राइम जिसमें हैकिंग, फिशिंग के कारण लोगों का पैसा चोरी भी हो सकता है ऑनलाइन। ऑनलाइन धोखाधड़ी भी क्राइम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए डिजिटल लेनदेन की पूरी जानकारी होना बहुत जरूरी है इस धोखाधड़ी से बचने के लिए।

सरकार ने डिजिटल लेनदेन को प्रेरित करने के लिए बहुत से बेनिफिट और स्कीमें लांच की हैं, ताकि ज्यादा से ज्यादा लोग इसे अपनाएं। यह हमें भ्रष्टाचार और काले धन को रोकने में भी मदद करता है। डिजिटल लेनदेन से ऑनलाइन रिकार्ड बनता है, जिससे पारदर्शिता बढ़ती है। सरकार ने युपीआई और भीम ऐप जैसी सुविधा गाँव-गाँव तक पहुँचाई ताकि लोग इस माध्यम का इस्तेमाल करें। इतना ही नहीं, बैंक भी इसमें अहम भूमिका निभाते हैं, लोगों को जागरूक करके इसके फायदे और जिससे लोग किसी धोखाधड़ी का शिकार न बने।

जहाँ डिजिटल लेनदेन ने हमारे जीवन को इतना सर और सुखी बना दिया है, वहीं गाँव के लोग इसका लुफ्त नहीं उठा पाते, क्योंकि बिजली या इंटरनेट की सेवा की अनुपलब्धता। इसलिए सरकार यदि डिजिटल शिक्षा, मोबाइल इंटरनेट या बिजली गाँव गाँव तक पहुँचा दे तो यह हमारे भारत को सशक्त बनाने में मददगार साबित होगी। तो हम विश्वस्तर पर गर्व से कहेंगे-

हमारा भारत, प्यारा भारत, डिजिटल भारत।

डिजिटल लेनदेन अर्थात कैशलेस अर्थव्यवस्था हमें पूरे विश्वभर में एक नए रूप से प्रेजेंट/ प्रस्तुत करेगी जो हमें एक कदम और नई ऊँचाईयों की ओर बढ़ाएगी और हमें विकसित, सक्षम और सशक्त बनाने में अहम भूमिका निभाएगी।

श्री. विशाल डोगरा, अहिंदी भाषी- तृतीय पुरस्कार विजेता

हर व्यक्ति अपनी कहानी में सही हो सकता है—समस्या तब होती है, जब हम सामने वाले की कहानी सुने बिना फैसला कर देते हैं। पेश है एक हास्य कविता—

एक मच्छर की मोहब्बत

मैं मच्छर हूँ, खूनी नहीं,
 खून पेट करवाता है।
 जब भूखा रहता हूँ मैं,
 याद आए खूनी नाता है।
 मैंने थोड़ा खून ही तो लिया है,
 इंसान मुझे मारने क्यों आता है।
 न चाय पीता, न पीता हूँ कॉफी,
 सारा समर्पण इंसानों पे ही जाता है।
 इंसानों का प्रेम-प्रेम, मुझको हक नहीं?
 मच्छर भी अपने प्रेम को भीड़ में खोज पाता है।
 पंखे की तेज़ हवा से लड़के, कंबल में आ करके,
 पहले गुनगुनाता, मनाता और फिर प्यार जताता है।
 इतना प्रेम पर भी इंसान को देखो,
 तालियाँ पीटे, गुस्से में बड़बड़ाता है।
 गलती क्या हुई, ऑल आउट तक लगाता है,
 क्या एकतरफ़ा मोहब्बत का यही हश्र होता है?
 बदले में हम क्या करें, सात जन्मों का रिश्ता है,
 किस्मत है, जन्मा मच्छर, दो तालियों के बीच पिसता है।
 हम बाहर रह लेंगे, रह लेंगे भूखे हम,
 न छोड़ पाएँगे इंसान को अकेला, वही फ़रिश्ता है।
 खून इश्क की फ़रियाद है,
 इस छोटे जीवन में बस इतना इज़हार करता है।
 ये खून का रिश्ता, जीवन मेरा,
 क्या इंसान मेरे प्यार को समझ पाता है?
 शायद गलती मेरी भी है, शायद नज़र का फ़र्क है,
 हर कोई अपनी नज़र से देखता है।

वो मुझे समझने से पहले मार देता है,
मैं उसे समझने से पहले काट देता हूँ!

श्री. शिवा कुमार तोमर

शोध छात्र

कविता रूपी कन्याएँ

कविताएं

जिन्हें झूलना था
चंदन के पालने में
बड़ी बड़ी आंखों से ताकना था
लुपझुप जगमगाता
झूमर...

उन्हें मिला दूब का बिछौना
औंधे मुंह लेटी
टुकुर टुकुर देख रही
तितली जिसके
पंख नीले हैं
कविताएं

जिन्हें खेलना था
रेशम की चुनरी ओढ़ी
गुड़िया से...
खेल रही
चलो पकाएं दूध भात
मिट्टी के छोटे चूल्हे में
झटपट पकाती
नए मेहमान के लिए
पता है उन्हें
घोंसले में अंडे फूट चुके हैं
कविताएं

जिन्हें मचलना था
हाथी की सवारी के लिए...
अपने कंधे पर
बिठा

ठुमक ठुमक
घुमा रही
नर्मदा पार सजा कार्तिक मेला

सुश्री. वंदना मौर्य , शोध छात्रा

कविता रूपी कन्याएँ

कविताएं

जिन्हें रटना था बारहखड़ी
रोज तड़के ही
खुशी खुशी
दोहराती हैं
जिंदगी का ककहरा
पगडंडियों पर चलते चलते
बना रही
जिंदगी का रास्ता
जला रही मशालें
जिन्हें
जलाना था सांझ का दिया
आहवान कर रही
युद्ध का
स्वाभिमान की रणभेरी
और जीवन मूल्यों की गूंज किए
जिन्हें सिखाया गया था
सासरे में बस बोलना
हां.. ना और पिया पिया....

सुश्री. वंदना मौर्य
शोध छात्रा

“माधव, अब तो तुम अवतार लो”

तड़पता तन हो या विचलित मन हो,
 दो वक्त की खुशी उस सूर्य से, अब तो तुम उधार लो
 तुम्हारी ज़िंदगी की उलझनों को कोई और नहीं आएगा सुलझाने,
 तुम खुद ही इसे सवार लो
 मेरे अंतर्मन के युद्ध के रथ की रस्सी मुझसे छूट रही है माधव,
 अब तो तुम अवतार लो
 कहते हैं कि, अर्जुन सा असमंजस होगा तो हिस्से श्री कृष्ण भी आएंगे,
 मेरा असमंजस अर्जुन से कम है क्या,
 या तुम्हारे दृग केवल अर्जुन के लिए नम हैं क्या,
 मैं अपने वर्चस्व की लड़ाई हार रहा हूँ माधव,
 अब तो तुम अवतार लो
 क्या मेरी पुकारों का भी कोई मोल नहीं है?
 क्या यह परीक्षा केवल मेरी है, तुम्हारा कोई दोष नहीं है?
 मेरी आस्था की डोर भी अब टूटने लगी है माधव,
 हर बार मैं ही क्यों झुकूँ, क्या तुमसे रूठना भी मेरा अधिकार नहीं है माधव?
 मैंने माना तुम्हें अपना, तुमने मुझे अपना माना क्या?
 हर बार तुमने अर्जुन को ही चुना, एक बार मुझे भी पहचाना क्या?
 अगर नहीं पहचाना तो मेरी आखिरी चुनौती सुन लो
 मैं अपने धागे वापस नहीं लूंगा माधव,
 मेरा एक कर्ज तुम्हारे सर आजीवन रहेगा,
 अपने दर से किसी को खाली हाथ भी भेजते हो,
 यह कलंक तुमको भी सहना पड़ेगा

श्री. अनुराग कश्यप
 शोध छात्र

दर्पण

कहानी ज़िंदगी की शुरू हुई है अभी,
 लड़ना मुश्किलों से ताउम्र बाकी है।
 अभी तो कठिनाइयों के तालाब देखे हैं,
 समुंदरों में तो अभी भी उतरना बाकी है।

बन तैराक ऐसा, जिसको किसी गहराई से न डर लगे,
 जो चाहे पाना, वो सभी आसानी से तू हासिल करे।
 हो फिर तालाब या महासागर, कठिनाइयों के तेरे सामने,
 उन सबको मुस्कुराते हुए, बिना डूबे तू पार कर सके।

श्री. तुषार शर्मा,
 कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता

एतवार की महिमा

ऐ सर्विस वाले एतवार, महीने में आता चार बार,
 बाकी दिन तो ऑफिस बोले – "काम करो सरकार!"
 जैसे ही सनीचर की रात ढले, मन में बजे सितार,
 तकिया भी मुस्काए धीरे से – "आ रहा है मेरा यार!"
 कब रात सनीचर होने को, सबको रहती आस,
 अलार्म घड़ी भी डर जाती, खो देती विश्वास।
 सोम से शुक्र तक इंसान, बन जाता मजदूर महान,
 एतवार आते ही फिर से, नवाब बने श्रीमान!
 खूब मिलेगा सोने को, यही सबसे बड़ा विचार,
 न कोई मीटिंग, न बॉस की मेल, न टार्गेट का प्रहार।
 पर किस्मत भी बड़ी खिलाड़ी, करती अजब प्रहार,
 रिश्तेदार सुबह-सुबह आ जाएँ – "उठो बेटा, नमस्कार!"
 ऐ सर्विस वाले एतवार, तू सचमुच बड़ा दयाल,
 तेरे दम पर कटता है यह नौकरी वाला जंजाल।
 पर शाम होते ही दिल रोए – "अब फिर वही सोमवार!",
 लगता है एतवार नहीं, बस सपना था दो-चार!
 ऐ सर्विस वाले एतवार महीने में आता चार बार,
 कब रात सनीचर होने को और खूब मिलेगा सोने को |

सुश्री. ऋषिका बुखारिया
 कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता

प्रो. थोमस पुकाइयिल जी का ब्रिक-एनसीसीएस के निदेशक के रूप में कार्यग्रहण



प्रो. मनीषा इनामदार, निदेशक (अतिरिक्त प्रभार) ने ऑनलाइन माध्यम से प्रो. थोमस पुकाइयिल को कार्यभार सौंपा





हिंदी कार्यशालाएँ

जनवरी 2026 में ई-ऑफिस कार्यान्वयन पर नोडल अधिकारियों द्वारा प्रशिक्षण कार्यशाला



20 मार्च 2026 को तिमाही रिपोर्ट प्रपत्र कैसे भरा जाए इसपर जानकारी प्रदान की गई



डॉ. स्वाति चढ्ढा, हिंदी अधिकारी-एनसीएल एवं सचिव- नराकास द्वारा राजभाषा नीति अनुपालन पर मार्गदर्शनात्मक कार्यशाला

हिंदी पखवाड़े के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में उस्ताहपूर्ण सहभागिता



पैनलिस्ट- डॉ. वृंदा वाळिंबे, सुश्री. रिबेका
डिसूझा, डॉ. सीमा जोशी, डॉ. निशांत
सिंघल, सुश्री. दिव्या कुमारी





हिंदी दिवस समारोह



नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (का.2) द्वारा आयोजित विभिन्न गतिविधियों में ब्रिक-एनसीसीएस की सहभागिता



9 जनवरी 2026 और 25 अगस्त 2026 को एफटीआईआई, पुणे में 'फिल्म रसास्वादन' प्रशिक्षण कार्यशाला



नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (का.2) के तत्वावधान में आयोजित प्रतियोगिताओं में ब्रिक-एनसीसीएस की सहभागिता



अन्य गतिविधियाँ



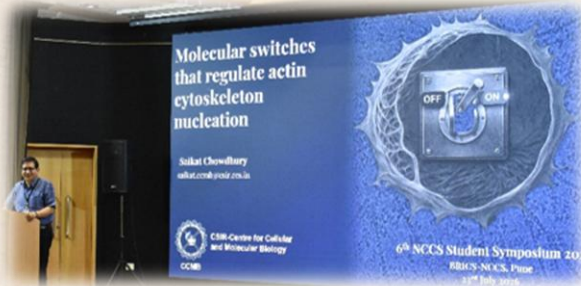
स्वच्छता पखवाड़ा- 1 से 15 मई, 2026



प्रौद्योगिकी दिवस- 11 मई 2026



अन्य गतिविधियाँ





राष्ट्रीय कोशिका विज्ञान केंद्र (रा. को. वि.के.) पुणे - 411007